शनिवार,
१५ मई, १९५४

सत्यमेव जयते

संसदीय वाद विवाद

1st

लोक सभा

छठा सत्र

शासकीय वृत्तान्त

(हिन्दी संस्करण)

Preservation Unit
Parliament Library

भाग २—प्रश्न और उत्तर से पृथक् कार्यवाही

विषय-सूची

(अंक ५--५ मई से २१ मई, १९५४)

बुधवार, ५ मई, १९५४

	पृष्ठ भाग
सदन पटल पर रखे गये पत्र---	
आय नियम, १९५४	४६४९
विभिन्न आश्वासनों इत्यादि के सम्बन्ध में सरकार द्वारा की गई कार्यवाही को बताने वाला विवरण	४६४९—४६५२
गैर-सरकारी सदस्यों के विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति--- आठवें प्रतिवेदन का उपस्थापन	४६५२
अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यान दिलाना---चनपतिया तथा बेतिया के बीच रेल गाड़ी का पटरी से उतर जाना	४६५२—४६५५
सदस्य की दोष सिद्धि	४६५५—४६५६
दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक--- संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव---असमाप्त	४६५६—४७१०

बृहस्पतिवार, ६ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र---	
वित्त विधेयक पर हुये विवाद के दौरान में सदस्यों द्वारा पूछे गये कई प्रश्नों के सम्बन्ध में टिप्पणियां	४७११—४७१६
तारांकित प्रश्न के उत्तर की शुद्धि	४७१६—४७१७
अविलम्बनीय लोक-महत्व के विषय की ओर ध्यान आकर्षित किया जाना--- कोलम्बो में हुए एशियाई प्रधान मंत्री सम्मेलन में मोरक्को, ट्यूनीशिया, फिलिस्तीन और इसराईल के सम्बन्ध में भारत के प्रधान मंत्री द्वारा व्यक्त किये गये विचारों के विषय में समाचार पत्रों की रिपोर्ट	४७१७—४७१९
दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक--- संयुक्त समिति को सौंपने तथा जनमत के लिये परिचालित करने का प्रस्ताव तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता को संशोधित करने वाला श्री एस० वी० रामस्वामी द्वारा प्रस्तुत विधेयक प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव--- असमाप्त	४७१९—४७७६

शुक्रवार, ७ मई, १९५४

संसद सदस्य श्री बी० एल० तुडू का देहावसान	

राज्य परिषद् से सन्देश ४७७७

बाल विधेयक--परिषद् द्वारा पारित रूप में सदन पटल पर रखा गया ४७७८

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यान आकर्षित करना--इस्पात के नये कारखाने की स्थापना का स्थान ४७७८--४७८०

सदन पटल पर रखे गये पत्र--

निष्क्रान्त सम्पत्ति के प्रश्न पर पाकिस्तान से हुई बातचीत के सम्बन्ध में विवरण ४७८०--४७८१

दण्ड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक--संयुक्त समिति को सौंपने तथा परिचालित करने का प्रस्ताव--असमाप्त ४७८१--४८१०

शनिवार, ८ मई, १९५४

आश्वासन समिति--

प्रथम प्रतिवेदन का उपस्थापन ४८११

हिमाचल प्रदेश तथा विलासपुर (नया राज्य) विधेयक--याचनाओं का उपस्थापन ४८११--४८१२

सदन पटल पर रखे गये पत्र--

चन्द्रनगर जांच आयोग की सिफारिशों के बारे में भारत सरकार के निर्णय ४८१२

संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्ते सम्बन्धी विधेयक--पुरःस्थापित ४८१२--४८१३

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक--संयुक्त समिति को सौंपा गया ४८१३--४८४४

हिमाचल प्रदेश तथा विलासपुर (नया राज्य) विधेयक--संशोधित रूप में पारित ४८४४--४८७५

शिलांग (राइफल रेंज तथा उमलांग) छावनियां विधि आत्मसातकरण विधेयक--संशोधित रूप में पारित ४८७५--४८७७

रबड़ (उत्पादन तथा विक्रय) संशोधन विधेयक--प्रवर समिति को सौंपने और परिचालित करने के प्रस्ताव--असमाप्त ४८७७--४९०६

सोमवार, १० मई, १९५४

लोक महत्व के विषय पर ध्यान दिलाना--सिंगरैनी कोयला खान, कोथागुडियम, हैदराबाद में दुर्घटना ४९०७--४९१०

समितियों के लिये चुनाव--

प्राक्कलन समिति ४९१०

लोक लेखा समिति ४९१०--४९११

लोक लेखा समिति में राज्यपरिषद् के सदस्यों का रखा जाना ४९११--४९१२

भारतीय प्रशुल्क (संशोधन) विधेयक--पुरःस्थापित ४९१२

रबड़ (उत्पादन तथा विक्रय) संशोधन विधेयक—प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव—स्वीकृत ४९१२—४९२५

हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने के विषय में राजयपरिषद् की सिफारिश से सहमति के लिये के प्रस्ताव—असमाप्त ४९२५—४९४८

शान्ति के कामों के लिये अणुशक्ति का प्रयोग ४९४८—४९८२

मंगलवार, ११ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

दिल्ली राज्य बिजली बोर्ड का १९५३-५४ का पुनरीक्षित प्राक्कलन और १९५४-५५ का आय व्ययक प्राक्कलन, और १९५४—५५ के आय व्ययक प्राक्कलनों के सम्बन्ध में व्याख्यात्मक टिप्पणी ४९८३

तारांकित प्रश्न के उत्तर में शुद्धि ४९८३—४९८४

सदन का कार्य—

भाषणों के लिये समय सीमा ४९८४—४९८५

हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद विधेयक—

संयुक्त समिति को सौंपने के विषय में राज्य परिषद की सिफारिश से सहमति के लिये प्रस्ताव—असमाप्त ४९८५—५०४४

बुधवार, १२ मई, १९५४

विशेषाधिकार प्रश्न ५०४५—५०५०

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

प्रशिक्षण तथा नियोजन सेवा संगठन समिति की रिपोर्ट ५०५०

राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाणन जांच समिति की रिपोर्ट ५०५०

अनुदान की मांगों (रेलवे) के सम्बन्ध में विवरण ५०५०—५०५१

प्राक्कलन समिति—सातवीं रिपोर्ट का प्रस्तुत करना ५०५१

गैर सरकारी विधेयकों तथा संकल्पों सम्बन्धी समिति—नवीं रिपोर्ट का प्रस्तुत करना ५०५१

हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद विधेयक—याचिकायें प्राप्त ५०५१—५०५२

रेलवे उपक्रम द्वारा सामान्य राजस्व को देय लाभांश की दर पर पुनर्विलोकन करने के लिये संसदीय समिति की नियुक्ति के बारे में प्रस्ताव—स्वीकृत ५०५२—५०५३

हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने के विषय में राज्य परिषद् की सिफारिश से सहमति के लिये प्रस्ताव—असमाप्त ५०५३—५१०८

राज्य परिषद से सन्देश ५१०८

विशेष विवाह विधेयक--परिषद् द्वारा पारित रूप में सदन पटल पर रखा गया ५११८

बृहस्पतिवार, १३ मई, १९५४

राज्य परिषद् से सन्देश ५११९—५१११

न्यनतम मजूरी (संशोधन) विधेयक--परिषद् द्वारा संशोधित रूप में सदन पटल पर रखा गया ५१११

पुस्तक प्रदाम (सार्वजनिक पुस्तकालय) विधेयक—परिषद् द्वारा संशोधित रूप में सदन पटल पर रखा गया ५१११

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) विधेयक—परिषद् द्वारा संशोधित रूप में सदन पटल पर रखा गया ५१११

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

सुदूर पूर्व के अंतर्राष्ट्रीय सैनिक न्यायाधिकरण के सदस्य के रूप में भारत सरकार द्वारा अपने अधिकारों तथा न्याय क्षेत्र के बारे में प्रेस विज्ञप्ति ५१११—५११२

अचल सम्पति अधिग्रह तथा अर्जन अधिनियम, १९५२ के अन्तर्गत अधिसूचना ५११७

भाग 'ग' राज्यों की सरकारें (संशोधन) विधेयक--याचिकायें उपस्थापित ५११७

अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यान दिलाना--जापानी युद्ध अपराधियों के विषय में क्षमा-दान प्रबन्ध में पाकिस्तान का अविश्राम भारत के वैध उत्तराधिकारी के रूप में सम्मिलित किया जाना ५११२--५११७

विशेषाधिकार का प्रश्न ५११७—५१२३

निर्वाचन क्षेत्रों का परिसीमन—चर्चा असमाप्त ५१२३—५१७६

काफी विक्रय विस्तार (संशोधन) विधेयक--वापस लिया गया ५१७६—५१७७

काफी विक्रय विस्तार (संशोधन) विधेयक--पुरःस्थापित ५१७७

हिन्दू विवाह तथा विवाह-विच्छेद विधेयक--

संयुक्त समिति को सौंपने के विषय में राज्य परिषद् की सिफारिश से सहमति के लिए प्रस्ताव--स्वीकृत ५१७७--५१९५

शुक्रवार, १४ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

१९५४-५५ के लिए अनुदानों की मांगों (रेलवे) के सम्बन्ध में सदस्यों से प्राप्त हुये कुछ ज्ञापनों के उत्तर देने वाले विवरण ५१९९

दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, १९५४—याचिका उपस्थापित ५१९९—५२००

४ दिसम्बर, १९५३ को पूछे गये अनुपूरक प्रश्न के उत्तर में शुद्धि ५२००

हाउस आफ पीपुल और पार्लियामेंट सेक्रेटेरियट का हिन्दी और अंग्रेजी में नामकरण ५२०१

विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर तथा पुनर्वास) विधेयक--पुरःस्थापित ५२०१—५२०२

संसद सदस्यों के वेतन तथा भत्ते सम्बन्धी विधेयक—संशोधित रूप में पारित ५२०२--५२५३

निर्वाचन क्षेत्रों के परिसीमन के बारे में चर्चा ५२५३—५२६८

शनिवार, १५ मई, १९५४

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में संकल्प—चर्चा असमाप्त ५२६९--५३५४

मंगलवार, १८ मई, १९५४

सदस्य द्वारा शपथ ग्रहण ५३५५

राज्य परिषद् से संदेश ५३५५—५३५७

औद्योगिक विवाद (संशोधन) विधेयक--परिषद् द्वारा पारित रूप में सदन पटल पर रखा गया ५३५७—५३५८

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित आदिम जाति आयुक्त का वार्षिक प्रतिवेदन ५३५८

अल्प सूचना प्रश्न के उत्तर की शुद्धि ५३५८—५३५९

तारांकित प्रश्न के उत्तर की शुद्धि ५३५९

सहायक प्रादेशिक सेना विधेयक—पुरःस्थापित ५३५९—५३६०

अन्तर्राष्ट्रीय-स्थिति सम्बन्धी प्रस्ताव स्थानापन्न प्रस्ताव स्वीकृत ५३६०—५४०९

न्यूनतम मजूरी (संशोधन) विधेयक राज्य परिषद् द्वारा किया गया संशोधन स्वीकार किया गया ५४०९—५४१०

पुस्तक प्रदान (सार्वजनिक पुस्तकालय) विधेयक राज्य परिषद् द्वारा किया गया संशोधन स्वीकार किया गया ५४१०

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश (सेवा की शर्तें) विधेयक—राज्य परिषद् द्वारा किया गया संशोधन स्वीकार किया गया ५४११—५४१३

विस्थापित व्यक्ति (प्रतिकर तथा पुनर्वास) विधेयक—संयुक्त समिति को सौंपने का प्रस्ताव स्वीकृत ५४१३—५४५१

सदस्य द्वारा शपथ ग्रहण ५४५२—५४५४

बुधवार, १९ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—

लेखापरीक्षा प्रतिवेदन (असैनिक) १९५२—भाग १ ५४५५

१९५१-५२ के भारतीय रेलवेज के विनियोग लेखे, भाग १—पुनर्विलोकन ५४५५

१९५१-५२ के भारतीय रेलवेज के विनियोग लेखे, भाग २—विस्तृत विनियोग लेखे ५४५५

१९५१-५२ के भारतीय रेलवेज के अवरुद्ध लेखे (जिसमें वे पूंजी-विवरण भी सम्मिलित है, जिनमें ऋण लेखे भी दिये हुये हैं), आयव्यय विवरण पत्र तथा हानि लाभ लेखे ५४५६

१९५१–५२ के रेलवे की कोयला खदानों के आयव्ययक विवरण पत्र तथा कोयले आदि की कुल लागत के विवरण ५४५६
लेखा परीक्षा प्रतिवेदन, रेलवेज़, १९५३ ५४५६
सामदायिक परियोजनाओं सम्बन्धी मूल्यांकन प्रतिवेदन ५४५७
चलचित्र जांच समिति की सिपारिशें ५४५७
अनुदानों की मांगों (रेलवे) सम्बन्धी ज्ञापनों के उत्तर ५४५७
विस्थापित व्यक्तियों की शिकायतों सम्बन्धी याचिकाएं ५४५७—५४५८
अविलम्बनीय लोक महत्व के विषय पर ध्यान दिलाना—उड़ीसा में चावल का अतिरिक्त स्टाक ५४५८—५४६०
काफ़ी विक्रय विस्तार (संशोधन) विधेयक—प्रवर समिति को सौंपने का प्रस्ताव—स्वीकृत ५४६०—५५०१
विशेष विवाह विधेयक—विचारार्थ प्रस्ताव—असमाप्त ५५०१—५५४६

बृहस्पतिवार, २० मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—
तारांकित प्रश्न संख्या ९३२ के एक अनुपूरक प्रश्न के दिये गये उत्तर को ठीक करने वाला वक्तव्य ५५४७—५५४८
सदस्यों की अनुपस्थिति सम्बन्धी समिति—तृतीय प्रतिवेदन उपस्थापित ५५४८
विशेष विवाह विधेयक—विचारार्थ प्रस्ताव—परिषद् द्वारा पारित रूप में—असमाप्त ५५४८—५६१९
राज्य परिषद् से सन्देश ५६१९—५६२०

शुक्रवार, २१ मई, १९५४

सदन पटल पर रखे गये पत्र—
विभिन्न सत्रों में मंत्रियों द्वारा दिये गये विभिन्न आश्वासनों, प्रतिज्ञाओं तथा वचनों पर सरकार द्वारा की गयी कार्यवाही दर्शाने वाले विवरण ५६२१—५६२२
खान तथा खनिज (विनियमन तथा विकास) अधिनियम, १९४८ की धारा १० के अन्तर्गत अधिसूचनायें ५६२३
दामोदर घाटी निगम के विषय में राव समिति का प्रतिवेदन ५७१३
राव समिति के प्रतिवेदन पर सरकार के विनिश्चय ५७१४
प्राक्कलन समिति के पंचम प्रतिवेदन की सिपारिशों पर सरकार द्वारा की गई कार्यवाही दर्शाने वाला विवरण ५७१४

प्राक्कलन समिति—आठवें तथा नवें प्रतिवेदनों का उपस्थापन ५६२३
याचिका समिति—तीसरे प्रतिवेदन का उपस्थापन ५६२३
अनुपस्थिति की अनुमति ५६२४
केन्द्रीय ट्रेक्टर संगठन के लिये ट्रेक्टर खरीदने सम्बन्धी वक्तव्य ५६२४—५६३३
भारतीय ढोर परिरक्षण विधेयक सम्बन्धी वक्तव्य ५६३३—५६४५
निष्क्रान्त सम्पत्ति व्यवस्था (संशोधन) विधेयक—पुरःस्थापित ५६४५—५६४६
प्रादेशिक सेना (संशोधन) विधेयक—पुरःस्थापित ५६४६
विशेष विवाह विधेयक—विचारार्थ—असमाप्त ५६४७—५७१२
राज्य परिषद् से सन्देश ५७१२

GIPD—HSD—918 LS—10-12-54—285

लोक सभा

शनिवार, १५ मई १९५४

लोक-सभा सवा आठ बजे समवेत हुई

[उपाध्यक्ष महोदय पीठासीन हुए]

प्रश्नोत्तर

(प्रश्न नहीं पूछे गए : भाग १ प्रकाशित नहीं हुआ)

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के सम्बन्ध में संकल्प

प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य-मंत्री (श्री जवाहर लाल नेहरू) : मैं प्रस्ताव करता हूं कि :

"वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तथा भारत सरकार की तत्सम्बन्धी नीति पर विचार किया जाये ।"

लगभग चार महीने पहले विगत जनवरी में इस सदन में वैदेशिक कार्यों पर एक विवाद हुआ था । तब से बहुत सी बातें हुई हैं और मैं ने समय समय पर उन के सम्बन्ध में वक्तव्य दिये हैं या कभी कभी प्रश्नों के उत्तरों में इन सब बातों के बारे में यथासमय हम ने अपना दृष्टिकोण और तथ्य सदन के समक्ष रखे हैं । अतः सदन को वे बातें अच्छी तरह विदित हैं ।

आज मैं कुछ अधिक महत्वपूर्ण बातों को लूंगा । आरम्भ में मैं सदन को याद दिलाऊंगा कि इस समय हमारे प्रतिनिधि पेरिस में फ्रान्स सरकार के साथ कल से भारत की फ्रांसीसी बस्तियों के भविष्य के बारे में बातचीत चला रहे हैं । और मैं उस सम्बन्ध में इस से अधिक और कुछ विशेष न कहूंगा कि जैसा कि सर्व विदित है पांडिचेरी और उस के आस पास की ताजी घटनायें बड़ी उल्लेखनीय हैं, वे पूर्णतः सहज रूप में और असाधारण रूप में तथा एकमत के साथ घटी हैं । वस्तुतः न केवल वहां की केन्द्रीय विधान सभा, बल्कि पांडिचेरी, माही और कराईकल के प्रत्येक कम्यून (मंडल) ने एकमत होकर बिना किसी जनमत आदि के भारत के साथ विलीन होने का निश्चय किया है । हम ने किसी भी अर्थ में हस्तक्षेप नहीं किया है, न भाग ही लिया है । भारतीय सीमा में संघर्ष रोकने के लिये हमें कुछ कार्यवाहियां करनी पड़ी हैं और इस लिये हम ने यह निश्चय किया और हमने पांडिचेरी स्थित फ्रांसीसी अधिकारियों को सूचित भी कर दिया कि फ्रांसीसी बस्तियों के एक भाग से दूसरे भाग को जाने में जहां भारतीय सीमा बीच में आ जाती है हम उस भारतीय सीमा में से होकर सशस्त्र पुलिस या फ्रांसीसी सेना को न निकलने देंगे । इस लोकप्रिय तथा सहज आंदोलन के फलस्वरूप लगभग १।५ फ्रांसीसी बस्तियां एक प्रकार के लोकप्रिय नियंत्रण में आ गई हैं और शेष भाग में भी तीव्र आन्दोलन चल रहे हैं । हम अपनी ओर से इस मामले में

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

बाधा नहीं डालना चाहते थे, क्योंकि हम सोचते थे कि सब से अधिक शान्तिपूर्ण निबटारा फ्रांसीसी सरकार के साथ बातचीत करने के बाद हो सकेगा। अतः हम उन से बातचीत चला रहे हैं और हमें आशा है कि इस बातचीत के फलस्वरूप शान्तिपूर्ण निर्णय हो जायेगा। मैं यह भी बता दूं कि यद्यपि हम अपनी स्थिति पर दृढ़ थे तथापि इस बातचीत के लिए यथासंभव अच्छा वातावरण पैदा करने की दृष्टि से और अपनी सद्भावना प्रकट करने के लिये हम ने निश्चय किया है कि कुछ मामलों में हम ने जो पग उठाये हैं, उन में कुछ ढ़ील कर दी जाये अर्थात् आज्ञापत्रों (परमिटों) के बारे में हम ने थोड़े अधिक आज्ञापत्र दे देने का निश्चय किया है, पैट्रोल की भारी कमी की दृष्टि से हम थोड़ा अधिक पैट्रोल देने लगे हैं, और जो पार्सलें आदि रोक ली गई थीं, अब हम उन्हें जाने देने लगे हैं। पर हमें आशा है कि फ्रांस सरकार भी अपनी ओर से अपने रुख से यह प्रकट करेगी कि वह भी शान्तिपूर्ण निबटारे की इच्छुक है।

दूसरी बात एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना है और मैं सदन का ध्यान तिब्बत के बारे में भारत और चीन के बीच हुए समझौते की ओर आकर्षित करूंगा। उस समझौते में बहुत सी समस्याओं को लिया गया है, उन में से प्रत्येक स्वतः इतनी महत्वपूर्ण न हो, पर हमारे व्यापार, हमारे तीर्थ यात्रियों, हमारी व्यापार-चौकियों, और हमारे संचार तथा शेष अन्य बातों की दृष्टि से यह समझौता बड़ा महत्वपूर्ण है। इस समझौते पर पहुंचने में बहुत समय लगा, इस कारण नहीं कि कोई भारी असमैक्य या कठिनाई थी, बल्कि इस कारण कि छोटी-छोटी बहुत सी बातें थीं और उन पर ब्यौरेवार चर्चा करनी पड़ी। इस समझौते में मुख्य बात इस की प्रस्तावना है जिस की ओर मैं सदन का ध्यान आकर्षित करूंगा। मैं उस प्रस्तावना को पढ़े देता हूं। इस में कहा गया है कि :

वे सिद्धान्त और बातें, जो हमारे पारस्परिक संबंधों और दोनों देशों के एक दूसरे के प्रति व्यवहार को शासित करती हैं, ये हैं :

(१) एक दूसरे के राजक्षेत्र की अखंडता और सर्व प्रभुत्व संपन्नता के प्रति परस्पर सम्मान।

(२) एक दूसरे पर आक्रमण न करना।

(३) एक दूसरे के घरेलू मामलों में हस्तक्षेप न करना।

(४) समानता और पारस्परिक हित।

(५) शान्तिपूर्वक साथ-साथ रहना।

ये सिद्धान्त न केवल इन मामलों में हमारी चीन ही से सम्बन्धित नीति का संकेत करते हैं बल्कि किसी भी पड़ौसी देश या किसी भी अन्य देश के प्रति भी हमारी नीति यही है, और यह सिद्धान्तों का सर्वांगीण वक्तव्य है और मेरा अनुमान है कि यदि विभिन्न देश अपने पारस्परिक सम्बन्धों में इन सिद्धान्तों को अपनायें, तो संभवतः आज की दुनियां की बहुत सी परेशानियां दूर हो जायेंगी।

वास्तव में यह हमारे लिये तथा साथ ही मुझे यकीन है कि चीन के लिये भी महत्व की बात है कि ये दोनों देश जिन की अब लगभग १८०० मील लम्बी पारस्परिक-सीमा है शान्तिपूर्वक और मैत्रीपूर्वक रहें तथा एक दूसरे की सर्वप्रभुत्व संपन्नता और अखंडता का आदर करें, एक दूसरे के साथ किसी भी रूप में हस्तक्षेप न करने के लिये सहमत हो जायें, और यद्यपि यह औपचारिक रूप में कहा नहीं गया है, पर व्यवहारतः परस्पर अनाक्रमण के लिये वचनबद्ध हो जायें। इस समझौते से एशिया के कुछ क्षेत्र में हमने बहुत सीमा तक शांति की स्थापना की है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि यह मैत्री-क्षेत्र

एशिया में भी और वस्तुतः शेष दुनियां में भी फैल जाये ।

सामूहिक सुरक्षा के बारे में, जिस का अर्थ सामूहिक युद्ध के लिये तैयारी करना था सामूहिक रूप से युद्ध के लिये तैयार रहना है, बहुत कुछ बातचीत चल रही है । सामूहिक सुरक्षा अच्छी है और एक अत्यावश्यक-लक्ष्य है, पर यह सामूहिक युद्ध के लिये तैयारी का रूप धारण कर लेती है । मेरा निवेदन है कि यदि सामूहिक शांति के लिये ऐसा किया जाय तो यह इस समस्या का एक स्वरूप समाधान होगा । अतः हम ने जब कभी विशेषतः एशिया में शांति क्षेत्र की बात की है, तो उस का लक्ष्य ऐसी सामूहिक शांति ही रही है जिस में किसी देश पर आक्रमण करने की भावना न हो और जिस में विश्व में शांति स्थापित करने में सहायता देना निहित हो और कम से कम उस क्षेत्र में शांति बनाये रखना हो । अतः मैं चाहूंगा कि सदन भारत और चीन के समझौते के इस व्यापक अर्थ पर विचार करे ।

जहां तक तिब्बत का सम्बन्ध है, यह वहां विद्यमान स्थिति को मान्यता देता है । वस्तुतः हम ने दो तीन वर्ष पहले उस स्थिति को मान्यता दे दी थी । कुछ आलोचना की गई थी कि इस मान्यता का अर्थ तिब्बत के ऊपर चीन की प्रभुसत्ता मान लेना है । इस बात के सिवा मुझे विदित नहीं है कि विगत कुछ शताब्दियों में कभी भी तिब्बत के ऊपर चीन की प्रभुसत्ता या अधिसत्ता को किसी ने चुनौती दी हो । भले ही चीन दुर्बल रहा हो या सशक्त रहा हो, उस ने तिब्बत के ऊपर अधिसत्ता का यह दावा सदा बनाये रखा है । यह सच है कि कभी कभी जब चीन दुर्बल हो जाता था, यह प्रभुसत्ता व्यापक रूप में न चल पाती थी । सदैव तिब्बत को बहुत कुछ स्वायत्तता मिली रही है, और इसलिये तिब्बत के प्रश्न पर चीन के रुख में कोई सैद्धान्तिक अन्तर नहीं पड़ा है । विगत २०० या ३०० वर्षों में ऐसी ही स्थिति बनी रही है । तिब्बत के साथ अधिक सम्पर्क रखने वाला यदि कोई दूसरा देश था, तो वह अंग्रेजी भारत था । जब ब्रिटिश नीति तिब्बत के ऊपर कुछ प्रभाव रखने की थी, तब भी उन्हों ने तिब्बत के ऊपर चीन की प्रभुसत्ता को अस्वीकार नहीं किया था, यद्यपि व्यवहारतः इस का पालन न होता था और वह तिब्बत की स्वायत्तता पर ज़ोर देते थे । हाल की घटनाओं के फलस्वरूप तथ्यों में कुछ और परिवर्तन हुए क्योंकि एक सशक्त चीन राज्य उस प्रभुसत्ता के प्रवर्तन के व्यवहारिक साक्ष्य के विरुद्ध था । अतः हम ने इस समझौते में किसी नई बात को मान्यता नहीं दी है, बल्कि वही बात दुहराई है, जो ऐतिहासिक तथा आज की व्यवहारिक परिस्थितियों के फलस्वरूप पैदा हो गई है । इस समझौते का वास्तविक महत्व व्यापक अर्थ में अनाक्रमण को समेट लेने के कारण, कि एक दूसरे की राज्य क्षेत्रीय अखंडता और प्रभुसत्ता को मान्यता देने के कारण तथा एक दूसरे के बाह्य तथा आंतरिक किसी भी प्रकार के मामले में हस्तक्षेप न करने की बात को समेट लेने के कारण है । सदन को याद होगा कि इस समझौते के हो जाने पर चीन के प्रधान मंत्री श्री चाउ एन लाई ने मेरे पास एक संदेश भेजा था, जिस का मैं ने हार्दिक स्वागत करते हुए उत्तर दिया था ।

इस समय जेनेवा में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सम्मेलन चल रहा है, जिस का सम्बन्ध मुख्यतः कोरिया और हिन्द चीन की समस्या से है । प्रति दिन दोनों ओर से रखे गये प्रस्तावों के बारे में विभिन्न संदेश हमें पढ़ने को मिलते हैं और कभी कभी दोनों पक्ष एक दूसरे के सर्वथा विरुद्ध दिखाई देने लगते हैं । सब से पहले तो जेनेवा में इस सम्मेलन का संपन्न होना ही महत्वपूर्ण है । इसी से पिछली बार बर्लिन

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

सम्मेलन के बाद भाषण देते हुए मैं ने आगामी जेनेवा सम्मेलन के महत्व पर जोर दिया था। उस समय मैं ने यह भी सुझाव दिया था कि इंडो चीन में युद्ध-विराम भी हो सकता है। इस सुझाव का बहुत से क्षेत्रों में स्वागत हुआ था, पर इस बारे में कुछ नहीं किया गया, इस का कोई प्रतिफल नहीं हुआ। इन विगत महीनों की बात सोचते हुए यह खेद होता है कि यदि उस समय युद्ध-विराम की बात पर अपेक्षतया अधिक जोर दिया गया होता, तो बहुत सी मृत्युओं और परेशानियों को दूर किया जा सकता था और आज जो स्थिति है, उस की अपेक्षा कहीं सरल और सुन्दर स्थिति होती, और डियन बियन फू की दुःखांत तथा वीरत्वपूर्ण घटना का आज कुछ दूसरा ही रूप देखने को मिलता।

जो भी हो, सदन देखेगा कि उस समय हम ने युद्ध-बन्दी के सम्बन्ध में जो कुछ कहा था, जेनेवा सम्मेलन में विचारार्थ मामलों में वह एक बड़त महत्वपूर्ण मामला बन गया है। अब प्रत्येक इस बात से सहमत है कि युद्ध-बन्दी होनी चाहिये, और प्रश्न केवल यह है कि यह किस प्रकार हो। बिल्कुल प्रारम्भ में ही, कुछ प्रक्रियात्मक कठिनाइयां जेनेवा सम्मेलन में उठीं, किन्तु वे सन्तोषजनक रूप से हल हो गयीं। यह एक अच्छी शुरूआत थी, क्योंकि हमें याद रखना चाहिये कि वहां मिलने वाले देशों में एक दूसरे के प्रति कठोर भावनायें थीं और अत्यन्त मत-वैभिन्य था। इसलिये यह अच्छी शुरूआत थी।

आज जेनेवा में विश्व युद्ध और विश्व शान्ति का प्रश्न एक कच्चे धागे पर लटका हुआ है। मेरे कहने का यह तात्पर्य नहीं कि एकाएक युद्ध हमारे सामने आ धमकेगा। फिर भी यह महत्वपूर्ण है कि जेनेवा सम्मेलन के परिणामस्वरूप हम युद्ध की ओर अग्रसर होते हैं अथवा शान्ति की ओर। यह याद रखने की बात है कि जेनेवा में जिन दोनों कोरिया तथा हिन्द चीन पर विचार किया जा रहा है, वे ऐशियाई प्रश्न हैं। दोनों देश एशिया के देश हैं और हम एशियाई देश, चाहे हम बड़े अथवा छोटे राष्ट्र हों, चाहे हमारी सैनिक शक्ति बहुत हो या न हो, इस बात से अत्यन्त निकट रूप से सम्बन्धित हैं कि कोरिया या हिन्द चीन में क्या होता है। वास्तव में, भौगोलिक रूप से हिन्द चीन के निकट होने के नाते हम तो और भी अधिक सम्बन्धित हैं। गत कुछ सौ वर्षों से यह एशिया का दुर्भाग्य रहा है कि यह न केवल उपनिवेश-वाद का शिकार रहा है, वरन् इसे दूसरों के लिये दूसरों द्वारा युद्ध का स्थल बनाया गया है। इसलिये यदि हम चाहते हैं कि एशिया में युद्ध का समापन हो, तो हमारी यह कोई अबंध इच्छा नहीं है। जैसा मैं ने एक पूर्व अवसर पर कहा था, हम एशियाई देशों के लिये जिन्होंने नवीन स्वतन्त्रता पाई है, यह चीज़ महज़ एक उत्कट इच्छा मात्र ही नहीं है, यह अत्यन्त आवश्यक है।

अभी हाल में मैं कोलम्बो में हुए पांच दक्षिण-पूर्वी एशियाई प्रधान मंत्रियों के सम्मेलन में गया था और वहां पांचों प्रधान मंत्रियों के मध्य जिन बातों में मतैक्य रहा, उस के सम्बन्ध में रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है। यह सम्मेलन कोई औपचारिक सम्मेलन नहीं था। इस प्रकार के सम्मेलन बहुधा अनौपचारिक हुआ करते हैं। यह अपने ढंग का सर्व प्रथम सम्मेलन था। इतिहास में पहली बार इन पांच देशों के प्रतिनिधि परस्पर सामान्य समस्याओं पर विचार करने के लिये एकत्रित हुए। अनिवार्यतः ही, कुछ समस्याओं के बारे में मत-वैभिन्यता थी और उन के सम्बन्ध में विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किये गये। किन्तु इस मत-वैभिन्यता के बावजूद भी, यह एक विलक्षण

बात है, कि सम्बन्धित पांचों देशों द्वारा सार्वजनिक मामलों के एक वृहद क्षेत्र के सम्बन्ध में, विशेषकर एशिया से सम्बन्धित मामलों में, एक सर्वसम्मत वक्तव्य जारी किया गया है। इस से विदित होता है कि, हमारे बीच मतभेद जो भी हों, एक ऐसा वृहत क्षेत्र है जिस के विषय में हम एशियाई देश समान विचार रखते हैं, और यह अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है।

तो इस कोलम्बो सम्मेलन में अनेक बातों पर विचार विमर्श किया गया। सम्मेलन के पश्चात् जारी हुआ सर्वसम्मत वक्तव्य प्रेस में प्रकाशित हो चुका है और माननीय सदस्यगण इस से अवगत हैं। इस में अन्य देशों के उपनिवेशवाद, रंगभेदभाव तथा गैर-हस्तक्षेप के सम्बन्ध में कहा गया है। इस में हमारे देशों के मामलों में किसी भी हस्तक्षेप, बाहरी या भीतरी, साम्यवाद या गैर-साम्यवादी, के विरुद्ध अटूट संकल्प की घोषणा की गई है। यह निश्चय ही है कि अधिकतर देशों की यही नीति रही है, कोई भी देश किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं चाहता। इसलिये यह ठीक है कि इस तथ्य को स्पष्ट रूप से कह दिया गया है। आज विश्व में न केवल दो प्रति द्वन्द्वी गुट ही मौजूद हैं वरन् वे दोनों के बीच एक प्रकार का धर्मयुद्ध सा चल रहा है। इस धर्म के गुणावगुण जो भी हों, दुर्भाग्यवश किसी न किसी तरह अन्य देश भी उस में फंस जाते हैं और यदि स्थिति और भी खराब हो जाये तो उस में उन का फंस जाना अनिवार्य ही है। हमारी इच्छा इस संघर्ष से दूर रहने की है। इसलिये यह घोषणा अत्यन्त महत्वपूर्ण है। सदन देखेगा कि यह घोषणा भारत-चीन समझौते की प्रस्तावना के, जो मैं ने कुछ देर हुई अभी पढ़ी थी, बिलकुल अनुसंगत है। इसलिये उस समझौते में हम ने वह गैर-हस्तक्षेप की नीति प्रतिपादित की है जो हम ने इस कोलम्बो वक्तव्य में वर्णित की है।

कोलम्बो वक्तव्य में ट्यूनीशिया तथा मोरक्को का भी ज़िक्र है। यहां पूछा जा सकता है कि ट्यूनीशिया और मोरक्को का विशेष रूप से क्यों निर्देश किया गया है जब कि औपनिवेशिक नियंत्रण के अन्य प्रदेश भी हैं। उन की सूची तो आप कठिनता से ही बना सकते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि ट्यूनीशिया और मोरक्को असल मानों में उपनिवेश नहीं हैं। वे प्रभुत्ताप्राप्त देश हैं जो गुटबद्ध हैं। व्यवहार में उन की प्रभुता नहीं के बराबर है और धीरे धीरे इसे दूर ढकेला जाता रहा है तथा औपनिवेशिक परिस्थितियां यहां पैदा कर दी गई हैं। किन्तु कानून और तथ्य में ट्यूनीशिया तथा मोरक्को में स्थिति सामान्य उपनिवेश से भिन्न है। वास्तविकता में दशाएं बहुत कुछ वैसी ही हैं। किन्तु यह एक कारण था कि हम ट्यूनीशिया तथा मोरक्को का पृथक रूप से ज़िक्र करना चाहते थे, क्योंकि उपनिवेश में समस्त उपनिवेश सम्मिलित हैं और ये दोनों जगहें उन मानों में उपनिवेश नहीं हैं।

वक्तव्य में हम ने एशियाई-अफ्रीकी सम्मेलन की सम्भाव्यता का भी ज़िक्र किया है। यह प्रस्ताव इंडोनीशिया के प्रधान मंत्री ने रखा था। हम सब ने इस का स्वागत किया, इस प्रकार के सम्मेलन को आयोजित करने में कुछ स्पष्ट कठिनाइयां हैं। और इंडोनीशिया के प्रधान मंत्री ने इस मामले को बाद में आगे बढ़ाने तथा सम्बन्धित सरकारों से मशविरा करने का भार अपने ऊपर ले लिया है।

एक दूसरा मामला जिस में कि हमें बहुत दिलचस्पी थी दक्षिण एशिया की आर्थिक समस्या है। हम इस पर विस्तारपूर्वक चर्चा तो मुश्किल से ही कर सकते थे क्योंकि इस के लिये विशेषज्ञों तथा अन्य लोगों की आवश्यकता होती। फिर, अन्य बातों पर चर्चा करने में भी हमारा समय पूरा हो गया था। किन्तु

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

कई देशों द्वारा कुछ प्रस्ताव किये गये और इस बात पर सब सहमत हुए कि ये प्रस्ताव सब सम्बन्धित सरकारों को परिचालित कर दिये जायें और यदि आवश्यक हो तो टेकनीकल स्तर पर अथवा अन्यथा इन पर विचार-विमर्श किया जाये ।

कोलम्बो सम्मेलन में जाने से ठीक पूर्व मैं ने इस सदन में छः प्रस्ताव रखे थे। मेरा यह इरादा नहीं था कि उन प्रस्तावों को ठीक इसी रूप में ही कोलम्बो सम्मेलन में आगे बढ़ाया जाये । मैं, स्वभावतः ही, यह चाहता था कि वहां एकत्रित प्रधान मंत्री इन प्रस्तावों की सामान्य पृष्ठभूमि का सार और उस के मर्म को समझ कर स्वीकार करें, न कि शब्दशः प्रत्येक चीज़ स्वीकार करें । और इसलिये मैं ने ये प्रस्ताव एक रूप-रेखा के रूप में प्रस्तुत किये । उन पर बहुत चर्चा हुई और परिणामस्वरूप उन बातों पर हम लोग सर्वसम्मत से सहमत हुए जो कि वक्तव्य में उल्लिखित हैं ।

इन प्रश्नों पर असहमति के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहा गया है । इस में सन्देह नहीं कि समस्याओं के विभिन्न समाधान प्रस्तुत किये गये थे, किन्तु तथ्य यह है कि मैं सदन से निवेदन करूंगा कि कोलम्बो में किये गये निर्णयों को पढ़ें तथा हिन्द चीन सम्बन्धी छहों प्रस्तावों को पढ़ें और देखें कि उक्त समाधान में कितनी एकरूपता है । इन प्रस्तावों में आधारभूत सुझाव ये हैं : युद्ध-बन्दी, सीधी बातचीत तथा गैर-हस्तक्षेप । कोलम्बो वक्तव्य में, युद्ध बन्दी को विशिष्टता दी गई है किन्तु शब्द गैर-हस्तक्षेप उस में नहीं है । किन्तु इस के स्थान पर क्या चीज़ है ? यह कहा गया है कि सीधी बातचीत की सफलता में इस बात से बहुत सहायता मिलेगी कि समस्त सम्बन्धित देशों विशेषकर चीन, इंगलैंड, अमरीका तथा रूस में, इस बात पर समझौता हो जाये कि युद्ध को पुनरारम्भ होने से रोकने के लिए क्या कदम उठाये जायें । अनिवार्य रूप से इस का अर्थ होता है गैर-हस्तक्षेप । समस्या के हल के लिये यह सीधा सुझाव है जिसमें गैर-हस्तक्षेप की चीज़ भी सम्मिलित है। इसलिये एक तरीके से कोलम्बो सम्मेलन ने इसे उस से कहीं अच्छे तरीके से रक्खा है जैसा कि मैं ने मूलतः रक्खा था ।

कोरिया या हिन्द चीन का वह वास्तविक प्रश्न जिस पर आप विचार करते हैं, यह है कि हम कहां तक एक पारिस्परिक समझौता करा सकते हैं, अथवा ये देश कहां तक कोई समझौता करना चाहता है । इतने पर भी, किसी भी निर्णय का थोपा जाना कदाचित् ही कोई समझौता हो सकता है । परन्तु अब एक बात पूर्णतया स्पष्ट हो गई है । वह यह है कि विभिन्न शक्तियां व देश इस प्रकार प्रतिद्वन्दी हो गये हैं कि किसी भी गुट के लिये कोई भी समझौता प्रतिद्वन्द्वी की पूर्ण असहमति से उस पर थोपना सम्भव नहीं है । यह सच है कि कोई भी समझौते को इधर या उधर झुका सकता है । यह समझौते के लिये इच्छा पर निर्भर है । यह इस बात पर निर्भर है कि किसी के पीछे कितनी शक्ति है । परन्तु, अन्तिम विश्लेषण में प्रश्न की विशेषताओं से सर्वथा पृथक कुछ भी नहीं थोपा जा सकता है । कोरिया में भी हम ने देखा है कि युद्ध तीन वर्ष तक होता रहा और युद्ध विराम पर आकर समाप्त हुआ । इस में किसी की विजय नहीं हुई तथा दोनों ओर से तीन वर्ष तक युद्ध होने के पश्चात् समझौते की इच्छा स्वभावतः उत्पन्न हुई । यदि उस विराम के पश्चात् आज वे इस प्रकार कहते हैं --और मुझे यह खेद भरे शब्दों में कहना पड़ता है कि इस प्रकार कहने की दोनों पक्षों की आदत है--मानों कि उन्हें कोई बड़ी भारी विजय प्राप्त हुई है । यदि प्रत्येक पक्ष विजेता

की स्थिति में कार्य करना चाहता है, तो उन की इच्छा, परन्तु तथ्य उसे असत्य बताते हैं। यह युद्ध विराम था तथा यदि हम समझौता करते हैं तो यह उस युद्धविराम स्थिति पर आधारित करना पड़ेगा। मेरा कहने का अभिप्राय यह नहीं है कि भौगोलिक दृष्टि से यह उस पर आधारित है, परन्तु मैं कह सकता हूं कि मस्तिष्क की पहुंच को यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि संघर्ष में विजयी कोई नहीं है तथा हमें समझौता करना है। कोरिया तथा हिन्द चीन में यही स्थिति है। अर्थात्, यदि वहां कोई समझौता होता है तो यह पारिस्परिक समझौता होगा न कि थोपने से हो। यह दुर्भाग्य की बात है कि कभी कभी हमारी इच्छायें स्थिति के तथ्यों से मेल नहीं खाती हैं। हम जो समझौता या हल चाहते हैं उस से सम्बन्धित हमारी इच्छाओं का तथ्यों से कोई सम्बन्ध नहीं है। प्रेसीडेन्ट आईज़न हावर ने की गई पहुंचों के बारे में बड़ी ही रुचिकर उक्तियों का प्रयोग किया है, 'अस्थिर तथा अस्वीकार्य'। अर्थात् जब कोई ऐसी वस्तु की इच्छा करता है जो उसे प्राप्त नहीं हो सकती तो उस की इस इच्छा का कोई आधार नहीं होता तथा जो अन्य पक्ष चाहता है वह अस्वीकार्य है। अतः कोई इस खाई को समाप्त नहीं कर सकता। जेनेवा में, आजकल, इन मामलों पर प्रति दिन अनेकों गुटों तथा सम्मेलनों में तथा निजी रूप में विचार-विमर्श होता है। प्रत्येक प्रकार के प्रस्ताव प्रस्तुत किये गये हैं जो एक दूसरे से अधिकतर भिन्न प्रतीत होते हैं। तो भी, मेरे हृदय में यह भाव उत्पन्न होता है कि युद्ध-विराम तथा समझौते के लिये आगे कार्यवाही करने की वास्तविक इच्छा है। मुझे इस में लेशमात्र भी सन्देह नहीं है कि जेनेवा में इस कार्य में लगे महाराजनीतिज्ञों में शान्ति की बड़ी भारी भावना विद्यमान है। इन सारे बड़े बड़े मतभेदों तथा कभी कभी एक दूसरे की कटु आलोचना के पीछे, ऐसा प्रतीत होता है कि उन की पहुंचों में समानता की वृद्धि हो रही है। मैं नहीं जानता कि जेनेवा की इन कार्यवाहियों का परिणाम क्या होगा। मैं सच्चे हृदय से आशा करता हूं कि सर्वप्रथम, युद्ध समाप्त करने तथा फिर समझौते की ओर आगे बढ़ने का कोई उपाय निकाला जायेगा। मैं फिर कहता हूं कि समझौते के लिये पारिस्परिक समझौते के अतिरिक्त और कोई पहुंच नहीं हो सकती, निर्णय थोपा नहीं जा सकता।

कभी कभी लोगों ने कहा है कि भारत जेनेवा जाने के लिये किसी प्रकार के आमन्त्रण प्राप्त करने का प्रयत्न कर रहा है। अपने विषय में मैं स्पष्टतापूर्ण कह सकता हूं कि मेरी केवल वहां न जाने की ही इच्छा नहीं है अपितु मैं किसी भी प्रकार का कोई भी भार लेना नहीं चाहता। मेरी कोई इच्छा नहीं है। इस के बारे में प्रयत्न करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। जब कभी इन कठिन सम्मेलनों में से किसी में हमें आमंत्रित किया जाता है, तो हम प्रसन्नता से वहां नहीं जाते हैं, अपितु हम उन परिस्थितियों से बाध्य हो कर जाते हैं जिन में कोई भी जाना टाल नहीं सकता, जैसे कि हम कोरिया को गये। हमारा सदैव ही यह व्यवहार रहा कि अपने आप को मामलों में न डाला जाये। इस के साथ ही साथ यह भी हमारा व्यवहार रहा है कि हम अपने आप को पृथक न कर लें और न ही यह कहें कि इस से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इस से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है। केवल हम ही नहीं, अपितु ऐशिया में अन्य पड़ौसी देशों का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है। हम यह नहीं कह सकते कि हम इस कार्य से अलग होते हैं। अतः, घनिष्ठ सम्बन्ध होने के कारण हम इस तथ्य से विमुख नहीं हो सकते कि यदि कोई ऐसी परिस्थिति उत्पन्न

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

जाती है जिस में किसी प्रकार की हमारी अगवाई या किसी निर्णय-विशेष में किसी प्रकार के हमारे सहयोग की आवश्यकता होती है, तो हम उस से दूर नहीं भाग सकते और न ही यह कह सकते हैं, नहीं, हमें पृथक रहने दो। अनिवार्यतः हम उन दायित्वों से अलग नहीं हो सकते जो एक महान राष्ट्र के होते हैं।

हिन्द चीन या कोरिया के सम्बन्ध में जो प्रस्ताव जेनेवा में प्रस्तुत किये गये हैं, मैं उन पर विचार विमर्श करना नहीं चाहता। इस से कोई लाभ नहीं होगा। हम सहायता देना चाहते हैं, परन्तु किसी देश या किसी प्रस्ताव की आलोचना कर के केवल अपने चातुर्य का प्रदर्शन करने के लिये नहीं। इस के अतिरिक्त इन प्रस्तावों में प्रति दिन परिवर्तन होते हैं। उन का साथ देना सरल नहीं है। फिर भी, जहां तक हमारा सम्बन्ध है, हम सहृदयतापूर्ण इन घटनाओं को देख रहे हैं और जब कभी आवश्यकता होती है, हम निजी रूप में अपना मत व्यक्त करते हैं। यदि कोई ऐसा अवसर उत्पन्न होता है जबकि हम कदाचित समझौता कराने में कुछ सहायता दे सकते हैं, उस समय हम उस पर बड़ी सावधानी से विचार करेंगे।

९ म० पू०

कोलम्बो सम्मेलन की एक बात के बारे में मैं सदन को पुनः स्मृति कराना चाहता हूं। अर्थात् हम ने इस बात पर जोर दिया था कि हिन्द चीन के सारे मामले संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान में होने चाहियें, तथा इस मामले में संयुक्त राष्ट्र भी सम्मिलित हो। हम इसे महत्व देते हैं। कभी मैं ने संयुक्त राष्ट्र की आलोचना की थी—संयुक्त राष्ट्र की बजाये उस के कार्य करने की—परन्तु तथ्य यही है कि संयुक्त राष्ट्र ही केवल एक ऐसी बड़ी अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है जो अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों पर विचार कर सकती है। इन मामलों में छोटे छोटे सम्मेलनों की बजाय संयुक्त राष्ट्र की उस बड़ी संस्था के लिये कहीं अधिक उचित है कि वह युद्ध तथा शान्ति के प्रश्नों पर विचार करे। यह ठीक है कि छोटे छोटे सम्मेलनों का होना अनिवार्य है, यदि संयुक्त राष्ट्र वहां है, तो शान्ति की सम्भावना अधिक हो जाती है। क्योंकि वहां जितने भी देश हैं वे सब शान्ति में रुचि रखते हैं। अतः एक प्रकार से संयुक्त राष्ट्र को सहयोगी बनाने का हम ने सुझाव दिया था, अर्थात् जेनेवा सम्मेलन संयुक्त राष्ट्र को सूचित करे। हो सकता है कि संयुक्त राष्ट्र वह समझौता कराने तथा उसे कार्यान्वित कराने में अपना सहयोग दे। किसी भी समझौते का होना काफी कठिन है—मुझे आशा है कि वह कठिनाई समाप्त कर दी जायेगी—परन्तु कोई पारस्परिक समझौता करने की कठिनाई को समाप्त करने के पश्चात् आगामी कार्य भी—समझौते को कार्यान्वित कराना समान रूप से कठिन है। अब यह पहले से भी अधिक होता है कि संयुक्त राष्ट्र संघ बीच में आ जाता है, और हम सब को, जो संयुक्त राष्ट्र संघ के सदस्य है, इस मामले में अपना अपना कर्त्तव्य पूर्ण करना पड़ता है।

मैं अब एक दो मामलों का संक्षिप्त में निर्देश करना चाहता हूं। मैं फ्रांसीसी बस्तियों का उल्लेख करता हूं। यह ठीक है कि गोआ की प्राचीन समस्या हमारे समक्ष है, तथा, स्पष्ट रूप में कहता हूं कि गोआ के विषय में हम ने कोई विशेष कार्यवाही नहीं की है। समय समय पर इस सदन में प्रश्न किये जाते हैं, तथा मैं पूर्ण रूप से माननीय सदस्यों तथा देश के अधैर्य को महसूस करता हूं। इतने पर भी मैं वह उत्तर देता हूं जिसे स्वयं मैं भी सर्वथा असन्तोषजनक समझता हूं। मुझे आशा है कि अन्य घटनाओं के कारण यह

समस्या सरल हो जायेगी । कदाचित मैं यह कह सकता हूं कि गोआ के सम्बन्ध में वास्तविक कठिनाई यह है कि उस पर विचार करने में १५वीं तथा १६वीं शताब्दियां २०वीं शताब्दी के मध्य के समक्ष आ खड़ी होती हैं । तीन सौ या चार सौ वर्षों की इस खाई को एकदम पाट देना सर्वथा असाधारण बात है । हम से आंगल-पुर्तगाल संधि जैसी संधियों के बारे में कहा जाता है, जो मैं समझता हूं, किसी रूप में छः सौ या सात सौ वर्ष पूर्व हुई थी और जिस का सोलहवीं, सत्रहवीं तथा उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ में विभिन्न रूपों में नवीकरण किया गया था । हमें बताया जाता है कि तीन सौ वर्ष पूर्व 'हिज़ होलीनेस दी पोप' ने पुर्तगालियों को आधा संसार देते हुए घोषणा की थी । हम से हाल की नैटो संधि तथा समझौतों के विषय में कहा जाता है तथा हम से कहा जाता है कि गोआ पुर्तगाल का अखंडात्मक अंग बन गया है । अब, इस विषय में, भूगोल में कुछ उलट पुलट होने के अतिरिक्त, पुर्तगाल के प्रधान मंत्री कई सौ वर्ष पुरानी आंगल-पुर्तगाल सन्धि पर ज़ोर देते हैं । स्वभावतः उस समय संसार की स्थिति कुछ भिन्न थी । वास्तविकता यह है कि भारत प्रकाश में ही न था । यहां तक कि उस समय, अंग्रेज़ भी भारत में न आये थे । आंशिक रूप में, मैं समझता हूं कि भारत इस दृष्टि से प्रकाश में आया कि बम्बई-द्वीप दहेज के रूप में दिया गया था । पुर्तगाल के शासनाधिकारी अब भी उसी समय के विचार में हैं जब बम्बई-द्वीप दहेज में दिया गया था । स्वभावतः हमारे लिये अपने को उस विचार-धारा के अनुकूल बनाना कठिन है । परन्तु आंगल-पुर्तगाल संधि के इस निर्देश की प्रत्यक्षतः भारत या गोआ में हुई घटनाओं से कोई संगति नहीं है, और न ही नैटो मे जो अटलांटक के राष्ट्रों की एक संधि है, कोई संगति है । सर्वप्रथम, जैसा कि मैं बता चुका हूं, हम न आंगल-पुर्तगाल संधि में सम्मिलित हैं और न ही नैटो संधि में । अतः हम पर कोई भी संधि चाहे वह जो हो, जिस में हम सम्मिलित नहीं हैं, लागू नहीं होती है । दूसरे, हम नहीं समझते कि इन में से किसी की भी, अन्य दृष्टि से भी, इस सम्बन्ध में कोई संगति है । वास्तविकता यह है कि नैटो संधि में सम्मिलित कुछ देशों ने स्वयं यह मत प्रकट किया है । इतने पर भी, हम ने कुछ संबंधित सरकारों को पत्र भेजे हैं, तथा प्रधान मंत्री सलाज़ार के वक्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया है तथा बताया है कि हम इस संधि को मान्यता नहीं देते हैं । हमें आशा है कि वे भी उसे ठीक स्थिति नहीं समझते हैं ।

फिर, श्रीलंका में भारतीय नसल के लोगों की दुःखद समस्या है । इस मामले पर विचार करने में मुझे बड़ी कठिनाई होती है, क्योंकि मुझे पूरा विश्वास है कि यह प्रश्न अन्य प्रश्नों की अपेक्षा कहीं अधिक ऐसा है जिसे केवल मैत्रीपूर्ण और शान्तिपूर्ण ढंग से हल किया जा सका, और मैं कोई ऐसी बात कहना अथवा करना नहीं चाहता जिस से वातावरण क्षुब्ध हो जाय अथवा कुछ अधिक कठिनाई हो । सभा को पता है कि कुछ मास हुए संभवतः जनवरी में भारत-लंका करार हुआ था । वह प्रायः इतना बड़ा शब्द है उस की परिभाषा नहीं हो सकती, यह एक समझौता था कि किस प्रकार इस विषय को हल किया जाय, यह स्वयं हल नहीं था, वरन् यह केवल समझौता था कि हल प्राप्त करने के लिये कैसे अग्रसर हुआ जाय । उस में कतिपय प्रक्रियायें थीं और उन प्रक्रियाओं में से एक बात जिस का हम ने विशेषतः उपबन्ध किया था यह थी कि दोनों में कोई सरकार इस विषय में दूसरे का परामर्श लिये बिना कोई कार्यवाही नहीं करेगी । निस्सन्देह इस से किसी सरकार की भी सम्पूर्ण प्रभुता कम नहीं होती । देशों के लिये किसी निर्णय पर पहुंचने के लिये यह एक सामान्य बात है कि

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

वे एक दूसरे से परामर्श करें। इस से उन की सम्पूर्ण प्रभुता अथवा स्वातन्त्र्य में कोई कमी नहीं होती। तत्पश्चात् कोई विशेष घटना नहीं हुई और फिर भी कुछ बहुत साधारण बातें हुई हैं जिस से लंका के बहुत से लोग भविष्य के सम्बन्ध में बहुत भयभीत हो गये हैं। माननीय सदस्यों को याद होगा कि ऐसे लोगों की एक समस्या है जिन्हें इस समय राज्यहीन व्यक्ति कहा जा सकता है। वे लोग निश्चय ही भारतीय राष्ट्रजन नहीं हैं। वे तथा उन के परिवार बहुत समय से वहां रहते हैं, उन में से बहुतों का जन्म वहां हुआ है

अतः सामान्यतः वे लंका के राष्ट्रीय हैं परन्तु फिर भी अपने राष्ट्रजनों के सम्बन्ध में विषय का अधिकार तथा प्राधिकार लंका को है। जब तक वे उन्हें राष्ट्रजन स्वीकार नहीं करते, वे किसी सरकार के राष्ट्रजन नहीं हैं और निश्चय ही भारतीय राष्ट्रजन नहीं हैं——अतः वे राज्यहीन व्यक्ति हैं जो लंका में रह रहे हैं और लंका की राष्ट्रीयता की आशा-लगाये हुए हैं। वस्तुतः उन्हों ने, प्रायः सब ने या उन में से बहुत लोगों ने इस के लिये आवेदन पत्र दिया है। मैं इस समय उन भारतीय राष्ट्रजनों की ओर निर्देश नहीं कर रहा हूं जो वहां हैं। उन की भी बहुत बड़ी संख्या है संभवतः १५०,००० और सभा को दोनों के बीच भेद पर सदा ध्यान रखना चाहिये। हम अस्पष्टतया यहां के हिन्दुओं और वहां के हिन्दुओं की बातें करते हैं। इस से उलझन पैदा होती है क्योंकि एक भारतीय साधारणतः भारतीय राष्ट्रजन होता है चाहे उस की चमड़ी का रंग कुछ भी हो अथवा चाहे वह, मैं यह शब्द प्रयोग करना चाहता हूं, एक भारतीय देशीकृत योरोपियन हो। वह इस दृष्टिकोण से भारतीय ही है लंका में वे भारतीय राष्ट्रजन भी हैं जो बिना भेद भाव के स्वतन्त्रता से कार्य करने के अधिकार मांगते हैं जिस की मांग कोई भी विदेशी राष्ट्रजन कर सकता है। दूसरे भारतीय उद्भव के लोग हैं जो बहुत समय से वहां रह रहे हैं और उन में से कुछ तो पुश्तों से रह रहे हैं। गत १५ वर्ष से, मेरा विचार है कि १९३०दशाब्दी के अन्तिम भाग से, कोई भी व्यक्ति भारत से लंका वैध देशान्तरवासी के रूप में नहीं जा सका। निस्सन्देह कुछ अवैध देशान्तरवासी गये हैं, उन्हें रहने दीजिये। जहां तक वहां के भारतीय राष्ट्रजनों का सम्बन्ध है वह एक पृथक समस्या है। वह भी एक समस्या ही है क्योंकि उन्हें धीरे धीरे बाहर निकालने की प्रक्रिया चल रही है। जबकि मैं उन के ऐसे कार्य के प्रति खेद प्रगट कर सकता हूं, मैं लंका सरकार के इस अधिकार का विरोध नहीं कर सकता कि वह किसी व्यक्ति के साथ जैसा व्यवहार करना चाहे कर सकती है। परन्तु जब यह प्रश्न एक व्यक्ति का नहीं वरन् अधिक लोगों का है तो यह परिस्थिति अधिक कठिन हो जाती है। इन भारतीय राष्ट्रजनों में से अधिक व्यवसायिक लोग हैं——अर्थात् व्यापारी और घरेलू कर्मचारी इत्यादि हैं। दूसरी समस्या जोकि वास्तविक समस्या है इन तथाकथित राज्यहीन व्यक्तियों की है, प्रायः उन सब ने लंका की राष्ट्रीयता प्राप्त करने के लिये आवेदन-पत्र दिये हैं, और इस सविषय पर लंका की कोई समिति आदि विचार कर रही है जो कुछ आवेदन-पत्रों को स्वीकार कर लेती है और कुछ को अस्वीकार कर देती है। अभी हाल में स्वीकार किये गये आवेदन-पत्रों में से कहीं अधिक आवेदन-पत्र अस्वीकार किये गये हैं। तो भी मैं इस प्रश्न के सम्बन्ध में गहराई से कुछ नहीं कहना चाहता और केवल लंका में घटनाओं का इस स्थिति पर खेद प्रगट करना चाहता हूं जिस से इतना अधिक भय उत्पन्न हो गया है। लंका में कुल ६००,००० अथवा ७००,००० लोग हैं यह काफी बड़ी

संख्या है और ८स में लंका का भी तथा ८न लोगों का भी हित है कि वे इस मामले को शान्तिपूर्ण ढंग से अपनायें अन्यथा स्वभावत: संघर्ष की दुर्भावपूर्ण भावना बढ़ेगी जिस का किसी को भी लाभ नहीं ।

एक विषय कुछ दिन हुए यहां प्रस्तुत हुआ था और एक प्रश्न के उत्तर म मैं ने एक संक्षिप्त वक्तव्य दिया था, वह विषय जापान के युद्ध अपराधियों को क्षमादान के सम्बन्ध में है । यह बहत महत्वपूर्ण विषय है, इस के प्रयोग के कारण अथवा क्षमादान के कारण नहीं, हम पूर्णत: इन लोगों को क्षमादान देने के समर्थक थे । परन्तु मैं अनुभव करता हं कि हमारी आवाज़ का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा जब अन्य देशों का जो सामान्यत: इस मत के विरोधी हैं, जिन देशों ने इस का विरोध किया था अर्थात् अमरीका और रूस का एक ही मत है कि क्षमादान नहीं देना चाहिये । तो भी वह ऐसा विषय है जिस का प्रभाव थोड़े लोगों पर पड़ता है । परन्तु इस में महत्वपूर्ण बात वह प्रक्रिया है जो इस में अपनाई गई है—भारत को बाहर धकेल दिया गया है क्योंकि उस ने सानफ्रांसिस्को सन्धि पर हस्ताक्षर नहीं किये थे और पाकिस्तान को उस में ले लिया गया है । यदि पाकिस्तान को किसी स्थान पर साधारण ढंग से लिया जा८ तो उस पर कोई आपत्ति नहीं । हम उन का स्वागत करते हैं । परन्तु जो तर्क प्रस्तुत किये गये वे महत्वपूर्ण हैं, मैं ने उन की ओर पूरा ध्यान दिया है । हम ने बार बार अधिवक्ताओं और अन्य लोगों का बार बार परामर्श लिया, यद्यपि मैं समझता था कि इस में विधि सम्बन्धी अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं थी । परन्तु सादिस के साथ तथा जिस आकस्मिक ढंग से हमें सूचना दिये बिना यह कार्य किया गया था—बस हमें निकाल बाहर किया गया और बाद में हमें जापान सरकार ने यह बताया कि उन्हें कहा गया है कि भारत का इस से कोई सम्बन्ध नहीं और पाकिस्तान को ले लिया गया है—यह सब अत्याधिक असाधारण बात है जिस का अन्तर्राष्ट्रीय कार्यों में अनुमान तक नहीं किया जा सकता । परन्तु इस के अतिरिक्त कि यह एक स्वच्छन्द निर्णय था और यह सब कुछ हुआ, विभाजन पश्चात् इंगलैंड के साथ हुए समझौते के मूलाधार पर ही आघात करने का प्रयत्न किया गया है । ये सब अभिलिखित तथ्य हैं । इस समझौते के अनुसार भारत का पुराना ही अस्तित्व चला आता था, न केवल देश का नाम निरन्तर चला आता था वरन् भारत देश स्वयं । हम ने सारे दायित्वों, सारे ऋण, सब अन्तर्राष्ट्रीय दायित्वों और सब कुछ का भार वहन किया । यह सब अभिलिखित है और अब हमें चुपके से कहा जाता है कि पाकिस्तान राज्य को अंग्रेजी काल के भारत का उत्तराधिकारी होने के कारण, क्योंकि उस ने सानफ्रांसिस्को संधि पर हस्ताक्षर किये थे—मैं नहीं समझ सका कि सानफ्रांसिस्को संधि का इस से क्या सम्बन्ध है—लिया जाता है और भारत को निकाल दिया गया है । यह गम्भीर चिन्ता का विषय है कि बड़े देश इस तरह का व्यवहार करें और अन्तर्राष्ट्रीय उत्तरदायित्वों को इस तरह के हलकेपन से लें । विशेष रूप से मुझे इस बात पर हैरानी है कि और राष्ट्र स्वीकार करते तो करते ब्रिटिश सरकार ने भी जिस पर एक विशेष उत्तरदायित्व है यह बात स्वीकार कर ली है । उसी से तो इन मामलों के सम्बन्ध में यह समझौता हुआ था । अत: मैं सादर यह कह सकता हूं कि इस प्रश्न को इस प्रकार आकस्मिक ढंग से निबटाने से यह पता चलता है कि कुछ मामलों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि अथवा यूं कहना चाहिये कि अन्तर्राष्ट्रीय रूढ़ियों तथा व्यवहार की भी अवहेलना की जाती है और केवल किसी व्यक्ति की इच्छानुसार ही कोई निर्णय थोप दिया जाता है । तो भी इस सब से हमें कोई अन्तर नहीं पड़ता

[श्री जवाहहलाल नेहरू]

चाहे जापानी युद्ध अपराधियों को क्षमादान करने के सम्बन्ध में हमारे मत को स्वीकार किया जाये अथवा न स्वीकार किया जाये। यह तो हमारी अकेली आवाज़ थी। परन्तु जो यह दृष्टिकोण अपनाया गया है इस से हमें अवश्य अन्तर पड़ता है। इसी दृष्टिकोण का अन्य मामलों में बार बार प्रयोग किया गया है। कोई भी देश और भारत तो कदापि यह बात पसन्द नहीं करता कि उस पर इस प्रकार निर्णय ठूंसा जाये या इस ढंग से उस से खिलवाड़ किया जाये। मैं यह बात केवल इस के निजी महत्व के कारण नहीं कहता वरन् उस पथ के चिह्न के रूप में कहता हूं जिस का अत्याधिक आदर किया जाता है और जिस के आधार पर आज कल बड़े देश कार्य करते हैं।

निस्सन्देह इस वाद विवाद में बहुत से ऐसे विषय है जिनकी ओर निर्देश किया गया है परन्तु मैं ने तुलना की दृष्टि से अधिक विस्तृत महत्व की कुछ बातों को ही लिया है क्योंकि उन में विस्तृत परिस्थिति आ ही जाती है। यदि जेनेवा सम्मेलन का कोई शुभ परिणाम निकला—और मुझे पूरी आशा है कि ऐसा होगा तो सारी परिस्थिति बदल जायेगी और अन्य समस्याओं पर भी इस परिवर्तन का प्रभाव पड़ेगा। मुझे पूरी आशा है कि ये महान तथा योग्य राजनीतिज्ञ जो जेनेवा में एकत्र हुए हैं इन समस्याओं का कोई हल निकाल सकेंगे। यदि वे कोई सुलझाव निकाल सकेंगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि जो अन्य देश अपनी समस्यायें वहां रखने की इच्छा नहीं रखते वे वहां किये गये निबटारों की सहायता करेंगे यदि वे निबटारे ही हुए, अन्यथा कोई देश ठूंसे गये निर्णय की सहायता नहीं करेगा। हमारे दृष्टिकोण में और अन्य देशों के दृष्टिकोणों में जिसे वे कभी कभी अपनाते हैं यही मूल अन्तर है।

जो बात मैं ने एक मिनट पहले कही है उसी को पुनः दुहराता हूं, हमारा दृष्टिकोण यह है कि सामूहिक शांति के लिये प्रयत्न किया जाये, और वस्तुतः सामूहिक शान्ति में ही सामूहिक सुरक्षा निहित है। अन्य प्रकार की सामूहिक सुरक्षा से—जिसमें सदा ही शस्त्रास्त्र की वृद्धि का भय और धमकियां बनी रहती हैं शांति का वातावरण तक उत्पन्न नहीं होता। इस से तो भय का वातावरण उत्पन्न होता है। वस्तुतः आज के विश्व में कोई लोग भी ऐसे नहीं जिनमें सुरक्षा की भावना हो, और जो अत्याधिक शक्तिशाली देशों के लोग हैं उन में भी सुरक्षा की भावना लेशमात्र को नहीं है। यह बात आश्चर्यजनक है। इस से पता चलता है कि सुरक्षा शक्ति और शस्त्रास्त्रों से नहीं होती क्योंकि शक्ति और शस्त्रास्त्रों का मुकाबला अन्य देश भी शक्ति और शस्त्रास्त्रों से करते हैं। सुरक्षा तो केवल तभी उत्पन्न हो सकती है जब कि एक नया वातावरण निर्माण किया जाये, एक नया दृष्टिकोण अपनाया जाये, और विश्व में इस बात को पहचाना जाये हमारा अस्तिव इस नीति में है कि हम जीवित रहें और अन्य को जीने दें, अन्य देशों के प्रति सहन-शीलता का प्रदर्शन किया जाये—आक्रमण तथा हस्तक्षेप को सहन करने से नहीं—वरन् इस बात की ओर सहन-शीलता दिखाई जाये कि अन्य देश जिस प्रकार रहना चाहते हैं रहें। यहां हम भारत में अपनी राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक भाग्य लिपि बना रहे हैं—इस का प्रयोग एशिया के अन्य देशों में भी हो सकता है। कभी हमारे समक्ष हमारे अपने तर्क और विवाद होते हैं। यह स्वाभाविक ही है, हम उन का निबटारा करते हैं। हम अन्य देशों की बहुत सी बातों को स्वीकार कर सकते हैं और ऐसा करते भी हैं। हमें ऐसा करना पड़ता है क्योंकि हम उद्योग, विज्ञान, शिल्प और अन्य सैंकड़ों बातों में, बहुत से नये दृष्टिकोण और विचारों में पिछड़े

हुए हैं। हम अन्य देशों से विलग नहीं रहना चाहते। हम उन्हें स्वीकार करना चाहते हैं परन्तु ऐसा हम स्वयं अपनी स्वतन्त्र इच्छा से करते हैं।

ज्योंहि हमारे ऊपर कोई चीज लादी जाती है, चाहे वह अच्छी ही क्यों न हो, उस का हमारे ऊपर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसलिये, किसी पर कोई चीज़ लादना ठीक नहीं है, हालांकि हम सब दूसरे के लिये कोई अच्छाई करना चाहते हैं और जब इसे कोई मंजूर नहीं करता तो हमें गुस्सा भी आता है। हम ज़बरदस्ती दूसरे पर कुछ चीज़ लादने लगते हैं, हो सकता है कि यह संसद् भी भारत के लोगों पर कभी कभी ज़रूरत से ज्यादा अच्छाई लादने का प्रयत्न करती हो। खैर, जब अन्य देश आप के लिये कुछ अच्छाई करना चाहते हों तो यह और भी खतरनाक मामला हो जाता है और उस में झगड़े अवश्य होते हैं। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि आप के ऊपर कोई अच्छी चीज़ भी लादी जायेगी तो वह आप को प्रिय नहीं हो सकती। इसलिये हमें इस को विश्व में 'जियो और जीने दो' के सिद्धान्त को मान कर ही चलना होगा। किसी देश के साथ बाह्य अथवा आन्तरिक रूप से कोई हस्पक्षेप नहीं होना चहिये। अपने विचारों को खुले रूप से फैलने दिये जाना चाहिये ताकि प्रत्येक देश स्वयं अपने ढ़ंग से विकसित हो। केवल इसी प्रकार सुरक्षा और सुबुद्धि की भावना पुनः उत्पन्न की जा सकती है। मुझे इस में कोई सन्देह नहीं कि अन्ततः अच्छे विचारों और उत्तम सिद्धान्तों की ही विजय होगी। हथियारों के भय से नया वातावरण उत्पन्न नहीं हो सकेगा, यदि एक बार संघर्ष हो गया तो फिर ऐसी स्थिति आ सकती है जिस में अच्छे या बुरे किसी प्रकार के विचारों के विकास का प्रश्न उत्पन्न भी नहीं होगा। अतः मैं यह आशा करता हूं कि जनेवा में बड़े बड़े राजनीतिज्ञ जो प्रयत्न कर रहे हैं उस में उन्हें सफलता प्राप्त होगी, यद्यपि हमें उस सम्मेलन के बारे में अपनी राय देने या उस की आलोचना करने का अधिकार है, फिर भी, मैं समझता हूं, कि हमें भी उन्हें अपनी शुभकामनायें भेजनी चाहियें।

उपाध्यक्ष महोदय: प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ:

> "कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तथा भारत सरकार की तत्सम्बन्धी नीति पर विचार किया जाये।"

इसके पश्चात् श्री रघुनाथ सिंह (ज़िला बनारस—मध्य), श्री ए० एस० सहगल (बिलासपुर), श्री टी० के० चौधरी (बहरामपुर), श्री एस० वी० रामस्वामी (सैलम), श्री एन० एल० जोशी (इन्दौर) व श्री साधन गुप्त (कलकत्ता—दक्षिण—पूर्व) ने अपने संशोधन प्रस्तुत किये।

श्री रघुरामैय्या (तेनालि) ने निम्नलिखित संशोधन प्रस्तुत किया:

> कि मूल प्रस्ताव के स्थान पर निम्नलिखित रखा जाये:
>
> "यह सदन अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति तथा भारत की तत्सम्बन्धी नीति पर विचार करने के बाद इस नीति का अनुसमर्थन करता है।"

उपाध्यक्ष महोदय: सदन अब प्रस्ताव पर बहस शुरू करेगा।

श्री एच० एन० मुकर्जी (कलकत्ता—उत्तर—पूर्व): वैदेशिक मामलों पर आज जो चर्चा हो रही है उसका इस दृष्टि से काफी महत्व बढ़ गया है कि इस समय जेनेवा में एक सम्मेलन हो रहा है जिसमें एशिया को कार्यसूची में प्रथम स्थान दिया गया है। आज सब से बड़ा प्रश्न यह है कि एशिया में युद्धस्थिति बनी रहने दी जाये या शान्ति

[श्री एच० एन० मुकर्जी]

स्थापित की जाये। जो देश दूसरे देशों का गला घोंट कर उन पर अपना प्रभुत्व जमाये रखना चाहते हैं, आज परिस्थितियों से बाध्य हो कर उन्हें भी इस सम्मेलन में भाग लेना पड़ रहा है, परन्तु अब भी वे इस सम्मेलन को असफल बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं। परिस्थितियों के कारण ही श्री डलेस जनवादी चीन के साथ जेनेवा सम्मेलन में बातचीत करने के लिये तैयार हुये हैं।

प्रधान मंत्री ने जापान के साथ हुई सानफ्रांसिस्को संधि में भारत के प्रति किये गये व्यवहार पर जो क्रोध प्रकट किया उसे देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। मुझे उन्हें क्रुद्ध देख कर प्रसन्नता हुई क्योंकि थोड़ी देर पहले उन्होंने यह कहा था कि जेनेवा सम्मेलन में न बुलाये जाने से भारत को कोई नाराज़गी नहीं है। मैं प्रधान मंत्री से यह कहने की आशा नहीं रखता कि जेनेवा सम्मेलन में न बुलाये जाने के कारण वे नाराज़ हैं, परन्तु यह बात अवश्य है कि भारत अपने नैतिक बल के कारण विश्व के मामलों में अपना प्रभाव डालता रहा है और कठिन समस्याओं को सुलझाने में उसने सहायता भी की है परन्तु इसके बावजूद भी एशिया सम्बन्धी महत्वपूर्ण मामलों में जानबूझ कर उसे अलग रखने की कोशिश की जाती रही है। यही चीज़ निशस्त्रीकरण उपसमिति की सदस्यता के बारे में हुई थी। इंगलैंड ने उसमें हमारी सदस्यता का सब से कड़ा विरोध किया। तो इसी वजह से मुझे खुशी हुई कि कम से कम एक बात पर तो हमारे प्रधान मंत्री को गुस्सा आया और उन्हें पता लगा कि किस तरह ये लोग भारत का ऐसे मामलों में भाग लेना पसन्द नहीं करते।

आज हम सब का ध्यान जेनेवा सम्मेलन की ओर केंद्रित है और निश्चय ही हम सब यह चाहते हैं कि हिन्द-चीन और कोरिया के मामले शान्तिपूर्वक तय हो जायें। अमरीका द्वारा उद्जन बमों तथा अन्य विनाशकारी शस्त्रों के परीक्षण से इस बात की और अधिक आवश्यकता हो गई है कि विश्व में शान्ति स्थापित रहे। एशियावासी भी इसी बात का अनुभव करते हैं कि शीघ्र से शीघ्र शान्ति स्थापित करना अत्यावश्यक है और उनकी इस भावना को रोकने वाला कोई नहीं है। चाहे उद्जन बम हो या अणु बम, एशियावासी इससे डरने वाले नहीं, वे अपने निश्चय पर अटल रहेंगे।

यदि आप हिन्द-चीन और कोरिया में शान्ति चाहते हैं तो वहां पर युद्ध बन्द करना पड़ेगा। हमें इन समस्याओं का हल वार्त्ता करके निकालना है। युद्ध से कोई समझौता नहीं हो सकता। इन सब बातों के लिये यह आवश्यक है कि हिन्द-चीन और कोरिया से समस्त विदेशी सैनिक चले जायें। चाहे वे एशिया, योरुप, अमरीका या और किसी देश के क्यों न हो। ऐसा हो जाने पर ही इन देशों के लोग अपने लिये स्वतन्त्रता से चुनाव कर सकेंगे। लेकिन अभी तक इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया है। अन्य बातों को सामने लाकर वास्तविक बात को टाला जा रहा है। मुख्य बात यही है कि विदेशी सैनिकों के हटाये जाने के लिये एक निश्चित तिथि तय कर दी जानी चाहिये जिसके पश्चात् इन देशों में कोई विदेशी सैनिक न रहे। सैनिकों के हटाये जाने के पश्चात् चुनाव आदि की व्यवस्था तटस्थ राष्ट्रों की निगरानी में होनी चाहिये। संयुक्त राष्ट्र संघ की निगरानी में नहीं क्योंकि काश्मीर का मामला हमारे सामने ही है। अब तो सब को ही मालूम हो गया है कि काश्मीर स्थित अमरीकी प्रेक्षक किस किस प्रकार भारत के विरुद्ध षडयंत्र करते

रहते हैं। अतः इन देशों में जनमत लेने का कार्य केवल तटस्थ राष्ट्रों की निगरानी में ही होना चाहिये।

इन एशियाई समस्याओं का प्रभाव भारत पर भी पड़ता है। भारत में फ्रांसीसी और पुर्तगाली बस्तियां आज भी हमें इस बात का ध्यान दिलाती रहती हैं कि हम पूर्णरूप से स्वतन्त्र नहीं हैं। यह बस्तियां हमारी देह में नासूर की तरह हैं। गोआ का मामला लेकर पुर्तगाली सरकार या वहां के तानाशाह डा० सालाज़ार ने १७वीं शताब्दी में ब्रिटेन के साथ हुई संधि की दोहाई दी है। मैं पूछता हूं इस २०वीं शताब्दी में यह १७ वीं शताब्दी के गीत गाना कहां तक ठीक है। मेरे विचार में हमें यह साफ तौर पर कह देना चाहिये कि अमुक अमुक तारीख तक इन बस्तियों का शासन हमारे हाथों में आ जाना चाहिये। यह एक ऐसा मामला है जिसके सम्बन्ध में हम भारतीय अब अधिक चुप नहीं बैठ सकते हैं।

मैं इस बात से सहमत हूं कि कोलम्बो सम्मेलन से अमरीकी साम्राज्यवादियों पर गहरा धक्का लगा है। वे इससे तिलमिला गये हैं। लेकिन मैं माननीय प्रधान मंत्री से पूछना चाहता हूं कि जब सम्मेलन में ट्यूनीशिया और मोरोक्को का प्रश्न उठ सकता था तो कीनिया, मलाया और ब्रिटिश गायना का प्रश्न क्यों नहीं उठाया गया। मेरे विचार में हमें यह न भूल जाना चाहिये कि यह सब ब्रिटिश साम्राज्य में आते हैं। आपका यह कहना कि ट्यूनीशिया और मोरोक्को की स्थिति मलाया, कीनिया या ब्रिटिश गायना से भिन्न है कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। मेरे विचार में इस समस्या को हाथ में न लेने का एक ही कारण है और वह यह कि हम अब भी ब्रिटिश राष्ट्र-मण्डल के सदस्य हैं। मैं फिर ज़ोर देकर कहना चाहता हूं कि इस प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाना चाहिये था।

कोलम्बो सम्मेलन में यह भी बात उठाई गई थी कि एशिया में साम्यवादियों या साम्यवाद के विरोधियों द्वारा कोई हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये। मैं इस बात से सहमत हूं कि हमें अकेला ही छोड़ दिया जाये। लेकिन इस सम्बन्ध में मैं एक बात कह देना चाहता हूं और वह यह कि साम्यवाद कोई निर्यात की वस्तु तो है नहीं जो एक देश से दूसरे देश को भेजी जा सकती है। साम्यवाद तो किसी भी देश की परिस्थितियों के अनुसार बढ़ता या पनपता है। मैं पूछता हूं कि १९४७ से जब से हमारे प्रधान मंत्री ने कार्यभार संभाला है, तब से किसने हस्तक्षेप किया है? बर्मा में कोमिन्टांग सैनिकों को किसने बढ़ावा दिया? लंका पर किस ने ज़ोर डाला कि वह जनवादी चीन से अधिक व्यापार न करे? डच उपनिवेशवादियों के विरुद्ध इन्डोनीशियनों को लड़ने से किसने मना किया? हिन्द चीन में फ्रांसीसियों को गोलाबारूद और हथियार कौन दे रहा है? क्या चीन या रूस का भी कोई उदाहरण है जिसमें इस प्रकार स्पष्टरूप से हस्तक्षेप किया गया हो? बात तो यह है कि साम्राज्यवादी अपने लाभ के लिये सब कुछ कर सकते हैं। हमें अपनी स्वतन्त्रता के चले जाने का भय साम्यवादियों से अधिक इन साम्राज्यवादियों से होना चाहिये। एशिया और अफ्रीका तो अलग रहे इन साम्राज्यवादियों ने सारे संसार पर कब्ज़ा जमाने की योजनायें बना रखी हैं। लेकिन मैं इतना कहे देता हूं कि पूंजीवाद अवश्य खत्म होगा और अन्त में समाजवाद का ही बोलबाला होगा। यह एक निश्चित बात है। आज बैसाखी पूर्णिमा का दिन है। आज के दिन ही बुद्ध देव का जन्म हुआ था, उनको निर्वाण प्राप्त हुआ और इसी दिन वे इस संसार को छोड़

[श्री एच० एन० मुकर्जी]

गये । लेकिन उन्होंने जो सिद्धान्त हमारे लिये छोड़े हैं उन पर चल कर ही हम इस संसार को रहने योग्य बना सकते हैं ।

सेठ गोविन्द दास (मंडला-जबलपुर—दक्षिण) : उपाध्यक्ष महोदय, जहां तक हमारी वैदेशिक नीति का सम्बन्ध हैं मैं समझता हूं कि पंडित जी और इस लोक सभा के सभी सदस्य इस बात को भली भांति जानते हैं कि म शुरू से ही इस वैदेशिक नीति का बड़ा भारी समर्थक रहा हूं । इसका कारण है, इस कारण को मैंने अनेक बार कहा भी है, और वह कारण ऐसा है जिसको अनेक बार कहा जाना चाहिये इस नीति के समर्थन करने का मेरा कारण यह है कि हमारी वैदेशिक नीति भारतीय संस्कृति की परम्परा के अनुसार है । भारतवर्ष के इतिहास को आप देखिये तो स्पष्ट ज्ञात हो जायेगा कि भारतवर्ष ने हमेशा हर देश और हर राष्ट्र से मैत्री का सम्बन्ध स्थापित रखने का प्रयत्न किया है । उसने सदा शान्ति चाही है । आधुनिक युग में महात्मा गांधी के जिस अहिंसात्मक तरीके से हमें स्वराज्य मिला, वही तरीका आज भी हम इस वैदेशिक नीति में बरत रहे हैं । इस लिये मैं, जैसा कि मैंने निवेदन किया, आरम्भ से ही इसका समर्थक रहा हूं, बहुत बड़ा समर्थक रहा हूं, और आज भी उतना ही बड़ा समर्थक हूं ।

श्री हीरेन्द्र नाथ मुकर्जी का भाषण अभी हुआ । मुझे यह देख कर खुशी होती है कि अब उनके लिये जिसे अंगरेज़ी में 'टोन' कहते हैं, उस 'टोन' में परिवर्तन हो रहा है । कुछ बातें ऐसी हैं जिन बातों में हमारी राजनैतिक दलगत नीति को कोई जगह नहीं मिलनी चाहिये । इस देश में अनेक ऐसी बातें हैं जो हम भिन्न भिन्न दलों में रहते हुए भी एक साथ कर सकते हैं । हमारे देश में इतने निर्माण कार्य हो रहे हैं । मेरी समझ में नहीं आता कि इन निर्माण के कार्यों में हम एक क्यों न हो जायें । इसी तरह वैदेशिक नीति भी है । हमारी वैदेशिक नीति एक ऐसी नीति है कि जिसका हम कांग्रेसवादी, प्रजा समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ वाले, हिन्दू सभा वाले, राम राज्य परिषद् वाले, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ वाले और जो स्वतन्त्र व्यक्ति हैं, वे भी सब मिल कर समर्थन कर सकते हैं ।

अब हम एक बात और देखें । हम देखें कि धीरे धीरे हमारी इस नीति का क्या नतीजा निकल रहा है । मैं हाल ही की कुछ बातों को आपके सामने रखना चाहता हूं । कोरिया का युद्ध अभी समाप्त हुआ, लेकिन उसके समाप्त होने के बहुत पहले हमने यह कहा था कि उसको समाप्त करने का अमुक अमुक तरीका है, और हमने देखा कि हमने उसके समाप्त करने के सम्बन्ध में जिन बातों का प्रतिपादन किया था उन्हीं के आधार पर कोरिया का युद्ध खत्म हुआ ।

जब हाइड्रोजन बमों का इधर उधर प्रयोग हुआ और उससे हमको क्षति नजर आने लगी तब हमारे प्रधान मंत्री जी ने सबसे पहले आवाज उठाई कि हाइड्रोजन बमों का इस प्रकार का प्रयोग बन्द होना चाहिये, और हमने देखा कि धीरे धीरे उनकी इस आवाज में कई देशों के कई नेताओं की आवाज मिली ।

हमने हिन्द चीन के लिये कहा कि युद्ध बन्द होना चाहिये, जो कुछ हमारे प्रधान मंत्री जी ने सबसे पहले कहा था वही आज अनेक देशों के नायक कहने लगे हैं ।

हमने अपनी वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में जब से हम स्वतन्त्र हुए तब से लेकर आज तक देखा है कि हम ने जो जो बातें कहीं वे सत्य निकलीं । जब हमने कोई बात कही तो उस वक्त चाहे अमरीका नाराज़ हुआ हो,

चाहे रूस रुष्ट हुआ हो, परन्तु अन्त में हमने देखा कि हमारा कहना सही था और इसी लिये हमारा विश्वास है कि आज जिस सामूहिक सुरक्षा, सामूहिक युद्ध, सामूहिक शान्ति की बात कही जाती है, और मैं प्रधान मंत्री जी से इस विषय में सर्वथा सहमत हूं कि यथार्थ में सामूहिक शान्ति की बात ही कार्य रूप में परिणत हो सकती है, उसमें जो कुछ हम यहां कह रहे हैं दुनियां उस बात को मानने वाली है।

मैं तो वह स्वप्न भी देखा करता हूं कि जिसमें सारे संसार में एक सरकार स्थापित होगी दो बातों में से एक बात हो सकती है। या तो इस दुनियां का सर्वनाश होगा, युद्ध नहीं रुकेंगे। जिस विस्फोटक पदार्थ का आरम्भ बारूद से हुआ था वह धीरे धीरे अणुबम और उद्जन बम तक पहुंच गया है। एक ऐसा समय आ सकता है जब किसी ऐसे बम का निर्माण हो कि जिससे हमारे इस भूमंडल, हमारे इस प्लेनेट के ही टुकड़े टुकड़े हो जायं। तो या तो युद्ध बढ़ेगा, विस्फोटक पदार्थ अधिक से अधिक बनाये जायेंगे और या संसार में समृद्धि होगी और युद्ध बन्द होंगे। दो में से एक बात होने वाली है। यदि मानवता का कल्याण होने वाला है, मानव उत्तरोत्तर उन्नति करने वाला है, तो युद्ध बन्द होने ही चाहिएं और मेरा यह निश्चित मत है कि युद्ध सम्पूर्ण रीति से तब तक बन्द नहीं हो सकते जब तक कि सारे संसार में एक सरकार की स्थापना न हो। आज यह बात एक कपोलकल्पित बात मानी जायगी पर मानवता का इतिहास आप देखें और देखें कि जो बातें किसी समय कपोलकल्पित मानी जाती थी सत्य हुई या नहीं हुई। एक समय था जब मानव मानव को खा जाता था उस समय कुछ लोग आगे आए और उन्होंने कहा कि भविष्य में यह न हो सकेगा। यही हुआ। आज ऐसी परिस्थिति नहीं है। एक समय था जब मानव के शरीर गुलामी व्यापार में बिकते थे इस के विरोध में भी आवाज उठी। आज चाहे शोषण हो पर कम से कम मानव शरीरों का क्रय विक्रय नहीं हो रहा है। मैं मानता हूं कि लीग आफ नेशन्स जिन उद्देश्यों को लेकर स्थापित हुई थी वे उद्देश्य सफल नहीं हुए। आज भी हमें यह दिखता है कि यू० एन० ओ० की सुरक्षा परिषद् और दूसरी चीजें कामयाब नहीं हो रही हैं पर मैं कहना चाहता हूं कि इसके सिवा दूसरा कोई त्राण नहीं है। लीग आफ नेशन्स चाहे सफल न हुई हो, यू० एन० ओ० को चाहे आज सफलता न मिल रही हो, लेकिन इस प्रकार की संस्थाओं का निर्माण होना आवश्यक है। बहुत बड़ा काम हम करने जा रहे हैं। उसमें ये असफलतायें बहुत छोटी छोटी असफलतायें हैं। दो, चार, पांच, दस, बीस, पचास वर्ष किसी मानव की जिन्दगी के लिए बहुत बड़ा समय होता है, पर किसी देश, किसी राष्ट्र और संसार की जिन्दगी के लिए यह समय कोई बहुत बड़ा समय नहीं है। इसलिए यदि आज यू० एन० ओ० सफल नहीं हो रहा है, तो भी यह कहना कि यू० एन० ओ० की आवश्यकता नहीं है और यू० एन० ओ० की सफलता होने वाली नहीं है, इससे मैं सहमत नहीं हूं अगर संसार में एक सरकार की स्थापना होनी है तो लीग आफ नेशन्स यू० एन० ओ० इस प्रकार की संस्थाओं का निर्माण होना एक अवश्यम्भावी बात है।

मैं श्री हीरेन मुकर्जी की एक बात से और सहमत हूं। उन्होंने कहा कि वैदेशिक नीति की चर्चा आज बड़े मौजूं वक्त हो रही है। वे बिल्कुल ठीक बात कहते हैं। एक ओर जहां जेनेवा में एक बहुत बड़ी परिषद् एशिया के मसलों पर विचार करने के लिए बैठी है, वहां हमारे प्रतिनिधि इस समय फ्रांस में बैठे हुए हमारे यहां की फ्रांसीसी बस्तियों के सम्बन्ध में भी चर्चा कर रहे हैं। एशिया की दृष्टि से, हमारे देश की दृष्टि से, सारे संसार की दृष्टि से आज कुछ महत्त्वपूर्ण चर्चायें चल रही हैं।

[सेठ गोविन्द दास]

फ्रांसीसी बस्तियों के सम्बन्ध में यहां पर न जाने क्या क्या कहा जाता था। पर हमने देखा कि जिस शान्तिपूर्ण नीति का हमने अवलम्बन किया उसका यह नतीजा निकला कि हमारे प्रतिनिधियों को बातचीत करने के लिए बुलावा फ्रांस से आया। हमें उन्हें प्रार्थना नहीं भेजनी पड़ी कि आप हमसे बातचीत कीजिये। उन्होंने हमको बुलाया यह एक बहुत बड़ी बात है। मैं इसे छोटी बात नहीं मानता, और मैं तो यह मानता हूं कि जो स्वाभाविक बात है वह होकर रहेगी। फ्रांस में जो चर्चा हो रही है उसका क्या नतीजा निकलता है मैं नहीं कह सकता लेकिन फ्रांसीसी बस्तियां भारतवर्ष का एक भाग हैं और भारतवर्ष का वह भाग आज नहीं तो कल और कल नहीं तो परसों हममें मिल कर रहेगा।

गोआ के सम्बन्ध में अभी प्रधान मंत्री जी ने ठीक कहा कि इस विषय पर जो प्रश्न उठाये गये उनका वे कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सके। ठीक है। ऐसी बातों का बहुत जल्दी संतोषजनक जवाब नहीं दिया जा सकता पर मुझे विश्वास है कि फ्रांसीसी बस्तियों के सवाल के हल होने के बाद गोआ का प्रश्न भी उठेगा और उस सम्बन्ध में भी एक स्वाभाविक हल होगा। जिस तरह फ्रांसीसी बस्तियां हमारे देश का एक भाग हैं उसी प्रकार गोआ भी हमारे देश का एक भाग है। जब हमने समूचे देश को ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्त कर लिया तो फ्रांसीसी बस्तियों के ऊपर फ्रांस का या गोआ के ऊपर पुर्तगाल का अधिकार रहना यह एक अस्वाभाविक बात है और यह बात रह नहीं सकती।

हमने उपनिवेशवाद का सदा विरोध किया है। अभी प्रधान मंत्रीजी ने यह कहा कि ट्यूनिशिया और मोरक्को दरअसल उपनिवेश नहीं कहे जा सकते। मैं मानता हूं कि वे उपनिवेश नहीं कहे जा सकते परन्तु फ्रांस वहां पर जो नीति बरत रहा है वह नीति उपनिवेशवाद की ही नीति है, और अगर हम उपनिवेशवाद का विरोध करते हैं तो चाहे वह उपनिवेशवाद मोरक्को में बरता जाय, ट्यूनिशिया में बरता जाय, इंगलण्ड के द्वारा केनिया में बरता जाय, कहीं भी बरता जाय, हम उसका विरोध करेंगे। इस संसार में शान्ति सम्भव ही नहीं है जब तक कि यह उपनिवेशवाद किसी भी रूप में फ्रांस के द्वारा, इंग्लैण्ड के द्वारा या किसी भी राष्ट्र के द्वारा चलाया जा रहा है।

प्रधान मंत्री जी ने भारत और चीन का इस समय जो एक समझौता हुआ है उसका भी ज़िक्र किया। जहां तक तिब्बत का सम्बन्ध है उस समझौते की कुछ आलोचना हुई है लेकिन मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि यदि आप चीन के इतिहास को देखें, तिब्बत के इतिहास को देखें तो कोई समय भी ऐसा नहीं था कि जब तिब्बत सर्वथा स्वतन्त्र देश रहा हो। तिब्बत हमेशा किसी न किसी प्रकार से चीन के अन्तर्गत एक राष्ट्र रहा है। इसलिए मेरी समझ में नहीं आता कि इस समझौते की, जहां तक तिब्बत का सम्बन्ध है, क्यों आलोचना होनी चाहिए।

कोलम्बो में हमारे प्रधान मंत्री जी को जो समर्थन प्राप्त हुआ उस समर्थन के लिए वे बधाई के पात्र हैं। मतभेद तो बड़ी बड़ी बातों में रहना एक स्वाभाविक बात है। मतभेद सदा रहे हैं। आज भी हैं, सदा रहेंगे। परन्तु मतभेदों के बावजूद जब हम यह देखते हैं कि मतभेद कितने क्षेत्रों में है और एकता कितने क्षेत्र में है तब हमें हर्ष होता है। अभी कोलम्बो में जो परिषद् हुई उसमें कई बातों में जो प्रधान मंत्री वहां पर एकत्र हुए उन में मतभेद रहा इसमें सन्देह नहीं, किन्तु जो अभी वक्तव्य प्रधान मंत्री जी ने पढ़ा उससे साफ हो जाता है कि मतभेद का स्थान बहुत थोड़ा था और एकता का क्षेत्र बहुत बड़ा था।

मैं सदा यह मानता रहा हूं कि इस संसार का भविष्य एशिया और अफ्रीका के ऊपर निर्भर है। यूरोप के उत्कर्ष का समय करीब करीब खत्म हो गया। यूरोप की इस समय की हालत को कोई भी यूरोप में जाकर देख सकता है। मैं हाल ही में उसे देख कर आया हूं। अमरीका और रूस आपस के झगड़ों का निर्णय हम एशिया की भूमि पर नहीं होने देना चाहते। हम यह स्पष्ट कहते रहे हैं कि आप लोगों को लड़ना है तो लड़िये। आपकी संस्कृति यूरोप की संस्कृति रही है। रूस का कुछ भाग यदि एशिया का हिस्सा है तो रूस का कुछ भाग यूरोप का भी हिस्सा है। बल्कि यदि यह कहा जाय तो अनपयुक्त न होगा कि रूस का वह प्रधान हिस्सा जो उसकी नीतियां निर्धारित करता है, यूरोप का हिस्सा है। तो युरोप और अमरीका की लड़ाई का निबटारा एशिया की भूमि पर हो, भारत भूमि पर हो, यह हमें कभी मंजूर नहीं होगा। इसलिए अभी अमरीका ने जो पाकिस्तान को सैनिक सहायता दी उसका हमने इतना विरोध किया। हम चाहते हैं कि एशिया में लड़ाई न हो। हम तो यह भी चाहते हैं कि अमरीका और रूस का भी किसी न किसी प्रकार से समझौता हो जाय। उनमें भी हम लड़ाई के इच्छुक नहीं हैं। पर यदि वे लड़ना ही चाहते हैं और यदि वह लड़ाई नहीं रुकती है तो हम यह कदापि नहीं चाहेंगे कि उस लड़ाई के लिए भारत भूमि को अड्डा बनाया जाय। हमने उसका हमेशा विरोध किया है। आज भी हम उसका विरोध करते हैं।

प्रधान मंत्री जी ने धर्म युद्ध की बात कही। मैं कहना चाहता हूं कि यथार्थ में यह धर्म युद्ध नहीं अधर्म युद्ध हो रहा है। धर्मयद्ध के तो हम हमेशा पक्षपाती रहे हैं, यदि शान्ति से चीजें नहीं निबटतीं तो युद्ध अनिवार्य हो जाता है। यह ठीक है कि हम धर्मयद्ध का पक्ष लेते हैं पर जो युद्ध हो रहा है वह धर्मयुद्ध न होकर घोर अधर्म युद्ध है और इस प्रकार के अधर्म युद्ध का हमारे द्वारा समर्थन हो यह कदापि नहीं हो सकता।

दुनियां बहुत छोटी हो गयी है, शीघ्रगामी साधनों के कारण। दुनियां चाहे किसी समय बहुत बड़ी रही हो, चाहे आज भी भिन्न भिन्न राष्ट्र हों, चाहे भिन्न भिन्न देश हों और चाहे भिन्न भिन्न संस्कृतियां हों लेकिन यातायात के साधनों के कारण दुनियां अब बहुत छोटी हो गयी है। आज जो लोग अन्तर्राष्ट्रीय बातों पर विचार किये बिना सिर्फ़ अपने देश और अपने देश से सम्बन्ध रखने वाली चीज़ों पर विचार करते हैं उससे कोई बड़ा नतीजा निकलने वाला नहीं है, इसलिये हमको अन्तर्राष्ट्रीय बातों पर विचार करना ही होगा। इसी विचार के कारण आज हमारा इस संसार में एक स्थान हो गया है। वह स्थान महात्मा गांधी के कारण हुआ है पंडित जवाहरलाल नेहरू के कारण हुआ है। इसलिये हम नेहरू जी की वैदेशिक नीति का हृदय से समर्थन करते हैं और हम इस बात का प्रयत्न करेंगे कि जिस सामूहिक शान्ति की स्थापना की आज हम कोशिश कर रहे हैं, वह कार्य रूप में परिणत हो।

श्री रघुरामैया (तेनालि) : मैं सब से पहले श्री मुकर्जी द्वारा कही गई कुछ बातों का ज़िक्र करूंगा। माननीय सदस्य के भाषण से कुछ एसा संकेत मिलता है कि उन्हें अन्तर्राष्ट्रीय मामलों के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान है; उन की रा। शायद यह थी कि हमारे प्रधान मंत्री को उन से बस थोड़ा सा ही ज्यादा ज्ञान होगा। वास्तव में श्री मुकर्जी ने मलाया तथा कोलम्बो सम्मेलन के विषय में जो बातें कहीं उन से तो उन की बात गलत मालूम होती है। प्रधान मंत्रियों ने कोलम्बो में स्पष्ट रूप से कहा था कि उपनिवेशवाद को रहे चले आने दिया जाना मनुष्य जाति के मूल अधिकारों का उल्लंघन एवं विश्वशांति

[श्री रघुरामैया]

के लिये खतरा है । श्री मुकर्जी की तरह हम ब्रिटिश उपनिवेशवाद और अन्य प्रकार के उपनिवेशवाद में भेद नहीं करते । हम उपनिवेशवाद में भेद नहीं करते । हम उपनिवेशवाद की सदा से आलोचना और निन्दा करते आये हैं ।

साम्यवादी दल के उपनेता का बुद्ध के बारे में चर्चा करना मुझे आश्चर्यजनक लगा । यह बड़ी अच्छी बात है कि वे महात्मा बुद्ध के उपदेशों को अपने सामने रख रहे हैं और इस दृष्टि से मुझे आशा है कि उन की नीति में भी अवश्य कुछ परिवर्तन होगा । मैं श्री मुकर्जी की इस राय से सहमत हूं कि हमें जेनेवा सम्मेलन में भाग लेने का अधिकार था । जेनेवा में जिन जिन बातों पर बहस हो रही है, उन का सब से अधिक हम, एशियावासियों पर प्रभाव पड़ता है और हमें ही इस सम्मेलन से अलग रखना सर्वथा अनुचित है । वास्तव में कुछ राष्ट्रों की उस में भाग लेने की आवश्यकता ही नहीं थी ।

लोगों की भावना है कि सम्मेलन में भाग लेने वाले कुछ राष्ट्र यह चाहते हैं कि सम्मेलन को सफलता न मिले । मैं श्री डलेस की नीति को निर्दिष्ट कर रहा हूं । जहां एक ओर सब मिल कर यह प्रयत्न कर रहे हैं कि कोरिया और हिन्द चीन में किसी प्रकार शान्ति हो, वहां दूसरी ओर श्री डलेस न्यूयार्क, वाशिंगटन और लन्दन भागे भागे फिर रहे हैं और तरह तरह के दल और गुट बनाने में लग हुए हैं । आज के समाचार पत्रों को देखने से पता चलता है कि हरेक देश इस बात का उत्सुक है कि जल्दी से जल्दी युद्ध-विराम सन्धि हो और शान्ति स्थापित करने के लिये कदम उठाय जायें, रूस सरकार ने हिन्द चीन में निष्पक्ष निगरानी किये जाने को स्वीकार कर लिया है, और श्री ईडन ने भी हिन्द चीन के बारे में कुछ सुझाव रखे हैं । परन्तु उधर अमरीका दूसरे देशों के साथ मिल कर गुट बना रहा है और दक्षिण-पूर्वी एशियाई रक्षा समझौते की तैयारी कर रहा है । अमरीका और फ्रांस हिन्द चीन में संयुक्त सैनिक कार्यवाही करने की बात सोच रहे हैं । मैं आशा करता हूं कि विभिन्न देश इस तरह की कोई बात नहीं होने देंगे जिस से विश्व शान्ति के भंग होने का खतरा हो । कम से कम हम एशिया के लोगों को चाहिये कि हम किसी राष्ट्र को वर्तमान बात चीत की संभावित सफलता में बाधा न डालने दें । अमरीका की सरकार इस बात को नहीं सोचती कि एशिया में शान्ति स्थापित करने का सब से अच्छा तरीका एशिया के मामलों को एशियावासियों पर ही छोड़ना है । वास्तव में अमरीका चीनी साम्यवाद को नष्ट करने की इच्छा रखता है । उन्हें विश्व शान्ति से अधिक चीन के साम्यवाद को नष्ट करने में रुचि है । हम स्वयं साम्यवाद के विरोध में हैं और अपने देश में इस का प्रचार बिल्कुल नहीं चाहते । परन्तु जैसा हमारे प्रधान मंत्री ने कहा, चीन जैसी सरकार चाहे वैसी ही स्थापित करने का उसे अधिकार है, हम उस के मामलों में हस्तक्षेप करने का हक नहीं रखते । हमारी वैदेशिक नीति के सिद्धान्तों का सब देशों ने स्वागत किया और कोलम्बो में उन्हें पूर्ण रूप से स्वीकार भी कर लिया गया है ।

अन्त में मैं पुर्तगाल के प्रधान मंत्री के उस वक्तव्य का निर्देश करूंगा जिस में उन्होंने कहा है कि यदि गोआ को स्वतंत्रता दे दी जायेगी तो वह देश नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा और राष्ट्र नाम की वहां कोई चीज़ नहीं रहेगी । इस वक्तव्य को पढ़ कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ । जैसा आप जानते हैं गोआ एक बहुत पिछड़ा हुआ क्षेत्र है । न तो वहां कोई प्रजातन्त्रा-

त्मक व्यवस्था है और न ही जनता को कोई अधिकार प्राप्त हैं । आर्थिक दृष्टि से भी गोआ पूर्णतः अविकसित है । न वहां कोई उद्योग हैं और न कोई बैंक । पुर्तगाल के प्रधान मंत्री का यह वक्तव्य असत्य और अनुचित है । हम पुर्तगाल के मामले में अब तक बहुत उदार रहे हैं । परन्तु अब फ्रांसीसी बस्तियों के मामले को खत्म करने के बाद हमें इस समस्या को हाथ में लेना चाहिये । पुर्तगाली सरकार के रवैये को अब और सहना हमारे लिये कठिन हो गया है ।

आचार्य कृपालानी (भागलपुर व पूर्निया): पहले की तरह आज भी मैं अपना यह सुझाव रखता हूं कि हमारी वैदेशिक नीति विभिन्न दलों के नेताओं की राय से बनाई जानी चाहिये । किसी राष्ट्र की वैदेशिक नीति एक राष्ट्रीय नीति होनी चाहिये, इसलिये मैं यह समझता हूं कि अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में दूसरे देशों में हमारी एक आवाज़ पहुंचे । हमारे प्रधान मंत्री विभिन्न राष्ट्रीय दलों को छांट सकते हैं और उन के परामर्श से वैदेशिक नीति का निर्माण कर सकते हैं । जब तक ऐसा नहीं होगा, वहां के लोग हमारे भाषणों को प्रसंग से हटा कर उद्धरित करते रहेंगे और अपने स्वार्थ के लिये तोड़-मरोड़ कर उन्हें प्रकाशित करेंगे । तो इसलिये हमें यह चाहिये कि हम विभिन्न दल के लोग मिल कर एक राष्ट्रीय नीति का निर्माण करें ।

अभी हाल में चीन से हमारी एक संधि हुई है । हम समझते हैं कि चीन ने तिब्बत पर आक्रमण कर के ही उसे अपने अधीन किया है । मैं इस तर्क से सहमत नहीं कि चीन का तिब्बत पर प्राचीन काल से ही अधिकार था । मैं तो समझता हूं कि सांस्कृतिक दृष्टि से तिब्बत चीन की अपेक्षा भारत के अधिक निकट है । मैं इसे चीन का उपनिवेश विस्तार ही कहूंगा, मैं यह भी कहूंगा कि जिस प्रकार चीन ने कोरिया-युद्ध में अपना हाथ डाला है उस से स्पष्ट है कि उस का इरादा उत्तरी कोरिया की सहायता करना नहीं था बल्कि स्वयं अपनी सुरक्षा करना था । यदि उन की सीमा को खतरा न होता, तो वे युद्ध-क्षेत्र में कभी नहीं उतरते । चीन का व्यवहार इस प्रकार का रहा है कि हम किसी भी आक्रांता पश्चिमी देश के साथ उस की तुलना कर सकते हैं ।

अब काश्मीर का प्रश्न लीजिये । काश्मीर में हम ने शेख अब्दुल्ला पर पूरा पूरा भरोसा किया और लाखों रुपये खर्च किये । परन्तु यह सब रुपया पानी की तरह बहा दिया गया और काश्मीर के लोगों को कोई लाभ नहीं मिला । शेख अब्दुल्ला काश्मीर में ही सर्वशक्तिमान नहीं थे बल्कि यहां राजधानी में भी उन की हरेक बात को माना जाता था । एक ऐसे व्यक्ति पर पूरा पूरा विश्वास करने के बाद भी जिस ने आगे चल कर हमें नीचा दिखाया, आज हम फिर कुछ वैसी ही चीज़ कर रहे हैं । बख्शी साहब जो कहते हैं उसे बिल्कुल ठीक माना जाता है और उस पर कोई आपत्ति नहीं उठाई जाती । हाल ही में बख्शी साह ने यह कहा था कि जयप्रकाश नारायण एक विदेशी हैं, परन्तु जब काश्मीर में डा० अशरफ का स्वागत हुआ तो किसी ने कुछ न कहा । मेरे कहने का अभिप्राय यह है कि हमें इन मामलों में पूरी पूरी सावधानी बरतनी चाहिये वरना हो सकता है कि आगे चल कर हमें धोखा खाना पड़े ।

मेरा यह मत है कि जनेवा सम्मेलन के बारे में यहां चर्चा करने से हमें कोई लाभ नहीं हो सकता । हां, एशिया के प्रधान मंत्रियों का जो सम्मेलन हुआ था, उस का काफी महत्व था । परन्तु मैं समझता हूं जापान या चीन के बिना एशियाई देशों का सम्मेलन पूरा नहीं कहा जा सकता । फिर, सम्मेलन का वातावरण पाकिस्तान के प्रधान मंत्री

[आचार्य कृपालानी]

की नीति के कारण, जो अमरीकी गुट में शामिल होने का वादा कर चुके थे, काफी बिगड़ गया था। मैं स्पष्ट रूप से यह भी कह सकता हूं कि ज्योंहि स्थिति में कुछ गड़बड़ हुई लंका और हिन्द एशिया भी तटस्थ नहीं रहेंगे। खैर, यह एक बहुत अच्छा और लाभप्रद सम्मेलन रहा जिस से भारत और लंका की प्रतिष्ठा काफी बढ़ गई है।

मैं भारत की वैदेशिक नीति के सामान्य सिद्धान्तों से सहमत हूं, परन्तु जैसा श्री मुकर्जी ने कहा हमें इंगलैंड के पीछे पीछे ज्यादा नहीं चलना चाहिये। यदि इंगलैंड का अनुसरण कर के हमें कोई फायदा मिलता हो तब तो ठीक है, परन्तु हम तो उस के पीछे उस समय भी चलते हैं जब वह हमारे खिलाफ बात करता है। पता नहीं इंगलैंड से हमें इतना प्रेम क्यों है, मैं समझता हूं कि ऐसा हमारे राष्ट्रमंडल में रहने के कारण ही नहीं है, वरन् इंगलैंड से हमारे प्रधान मंत्री के अ/क प्रकार के संबंधों के कारण भी हैं।

मैं चाहता हूं कि हमारा देश तटस्थता की नीति का अनुसरण करने के साथ साथ अपने आर्थिक विकास की ओर भी ध्यान दे। यदि हम वास्तव में एक स्वतन्त्र वैदेशिक नीति अपनाना चाहते हैं तो हमें विदेशी सहायता और अमरीकी रुपये पर निर्भर नहीं करना चाहिये अब तक हम विदेशों को अपने वाणिज्य तथा व्यापार में काफी प्रोत्साहन देते रहे हैं। हमारे यहां के चाय उद्योग, तेल उद्योग तथा बैंकिंग और बीमा क्षेत्र में विदेशियों का ही बोल बाला है। जब तक हम इन विदेशियों को अलग नहीं करेंगे तब तक हम स्वतन्त्र रूप से अपनी वैदेशिक नीति का पालन नहीं कर सकेंगे।

श्रीमती इला पालचौधरी (नवद्वीप) : भारत की वैदेशिक नीति का मूल उद्देश्य विश्व-शान्ति है। हमें अभी अपने देश में बहुत कुछ विकास-कार्य करना है, उस के लिये हमें बहुत से देशों ने सहायता भी दी है। यदि अब किसी प्रकार विश्व शान्ति भंग हो जायेगी तो हमारा सारा कार्य और हमारी सारी योजनायें ठप हो जायेंगी। हमारी आर्थिक उन्नति एवं विकास के लिये विश्व में शान्ति बनी रहनी आवश्यक है।

कभी कभी ऐसा ख्याल होता है कि हम ने पश्चिमी देशों से अपने सम्बन्ध अधिक बढ़ा रखे हैं और लोग यह सन्देह करने लगते हैं कि अन्तर्राष्ट्रीय विषयों में हमें मजबूर हो कर उन का साथ देना पड़ता है, भले ही उस विषय विशेष पर उन देशों से हम सहमत न हों। परन्तु हम ने कई बार अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में निडरतापूर्वक अपने विचार प्रगट कर के यह प्रमाणित कर दिया है कि हम किसी के दबाव में नहीं। हमें यह याद रखना चाहिये कि विदेशों से आर्थिक सहयोग प्राप्त करने का अर्थ आवश्यक रूप से यह नहीं कि हम न उन देशों की राजनैतिक प्रभुता स्वीकार कर ली है। हां, राजनैतिक बंधन के साथ आर्थिक बंधन का आना आवश्यक है। परन्तु भारत ने हमेशा निष्पक्ष हो कर अपने विचार प्रगट किये हैं। हमें हमेशा शान्तिपूर्ण तटस्थता का मार्ग ही अपनाते रहना चाहिये।

मेरा यह सुझाव है कि राजनैतिक संबंध के साथ साथ हमें अन्य देशों से सांस्कृतिक संबंध भी बढ़ाने चाहियें। यदि विदेश-स्थित हमारे दूतावास अन्य देशों से सांस्कृतिक सम्पर्क स्थापित करने का प्रयत्न भी करने लगें तो हमें शान्ति बनाये रखने के उद्देश्य में काफी सहायता मिलेगी।

डा० एस० एन० सिंह (सारन पूर्व): उपाध्यक्ष महोदय, आज सारे संसार की दृष्टि एशिया के देशों की ओर लगी है। खास मार्के की बात यह है कि चाहे हमारे एशिया के देश छोटे से छोटे क्यों न हों, यह नहीं चाहते कि कोई भी मुल्क, वह कितना ही बड़ा क/ें

न हो, उनके ऊपर किसी तरह का दखल रक्खे या किसी तरह की दस्तन्दाज़ी उसकी ओर से हो। यह भाव आज एक शब्द में व्यक्त किये जा रहे हैं—उपनिवेशवाद के खिलाफ एक आवाज़ ऐसी ज़ोरों की आवाज़ आज तक कभी भी एशिया में नहीं उठी थी और न कभी ऐसी कारगर हुई थी। मैं अपने देश की वाह्य नीति को इसी कसौटी पर कसना चाहूंगा विशेष-कर उस सन्धि को जो कि पिछले दिनों हम लोगों की तिब्बत के सम्बन्ध में चीन के साथ हुई है।

आप लोगों में से बहुत कम लोग इस सदन में होंगे जो कि तिब्बत से अच्छी तरह से वाकिफ होंग। मुझे इसका सौभाग्य मिला है और मैं दो तीन बार वहां जा चका हूं, वहां के लोगों को पसन्द करता हूं और वहां के लोगों के रहन सहन को भी जानता हूं तथा उनकी समस्याओं का भी मैंने अच्छी तरह से अध्ययन किया है। यह कहना सरासर गलत है कि वे हमेशा चीन के अधीन रहे हैं। यह बिल्कुल गलत है, आप कोई भी राजनैतिक डिक्शनरी उठा कर देखिये, कोई भी इतिहास उठा कर देखिये तो आप उसमें पायेंगे कि एक ज़माने में तिब्बत इतना मज़बूत था कि उसी ने चीन पर कब्ज़ा कर रक्खा था और उसी से वह कर लिया करता था।

कुछ दिनों के बाद जब इतिहास ने पल्ट खाया और तिब्बत कमज़ोर पड़ा तो चीनियों ने उसे दबाना चाहा, लेकिन तिब्बत वालों ने उसे कभी स्वीकार नहीं किया। पिछली शताब्दी के अन्त में जब रूसी साम्राज्यवाद और ब्रिटिश साम्राज्यवाद में आपस में संघर्ष चला उस इलाके के लिये तो उन्होंने भी तिब्बत को दबाना चाहा, लेकिन अन्त में आपस में फैसला किया कि ज्यादा छेड़छाड़ न की जाय। चीन तो एक कमज़ोर मुल्क है, उसकी नाम की 'सुजरेन्टी' मान ली जाय ज़ौर यह मामला अभी का अभी तय हो जाये। रूस और ब्रिटेन द्वारा इस प्रकार का समझौता हुआ जिसका नाम कन्वेन्शन दिया गया। जैसे ही तिब्बत वालों को इसकी खबर लगी कि इस प्रकार का समझौता हुआ है, और उनसे इसे मनवाने की कोशिश की गई वैसे ही उन्होंने यातुंग में इसे मानने से सरासर इंकार कर दिया।

सन् १९११–१२ में जब चीन में क्रान्ति हुई तो युवान शी काई वहां के प्रथम राष्ट्रपति बने। उन दिनों तिब्बत ने घोषित कर दिया कि हम पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हैं, हमारे ऊपर किसी का कब्ज़ा नहीं है। इस स्वतन्त्रता की उन्होंने सिर्फ घोषणा ही नहीं की बल्कि उसे कारगर भी किया। उसके बाद से और सन् १९४९ तक चीन का सिर्फ एक प्रतिनिधि जिसको 'आम्बन' कहा करते थ तथा जिसको कोई अधिकार नहीं होता था, उसका सिर्फ एक मिशन होता था जो ल्हासा में रहता था। १९४९ में तिब्बत वालों ने उसको भी मार भगाया। उसके बाद वहां कोई नहीं रहा। इसलिये चीन के तिब्बत पर अधिकार का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। १९५० में जब चीन का आक्रमण होता है तिब्बत के ऊपर, और चीन वहां पर फौजी अधिकार घोषित करता है तब उस सिलसिले में तिब्बत वालों का जो कहना है वह आपको सिर्फ एक ही जगह पर मिलेगा और मैं उसे आपके सामने रखता हूं। जब तिब्बत के ऊपर चीन का फौजी हमला हुआ तो वहां के मंत्रिमंडल और राष्ट्रीय असेम्बली ने लिखित रूप में राष्ट्र संघ के सामने अपना मामला रक्खा।

तिब्बती सरकार ने यूनाइटेड नेशन्स के सामने अपना मामला रखते हुए कहा था कि आप हमारी मदद करें। हमारे ऊपर हमला हुआ है। हम अपनी आज़ादी घोषित कर चुके हैं और उसके बहुत उपरान्त तक आज़ाद रहे आये हैं इसलिये आज चीन की सुजरेन्टी का भी सवाल नहीं रहा। इसको अंग्रेज हमारे ऊपर लादना जरूर चाहते हैं जैसा कि उन्होंने

[डा० एस० एन० सिंह]

शिमला कन्वेन्शन में कहा था। यह सम्मेलन १९१४ में हुआ था, लेकिन तिब्बत के लोगों ने इस कन्वेन्शन की चीनी सुज़रेन्टी को कभी स्वीकार नहीं किया। और चीन ने भी उस पर हस्ताक्षर नहीं किये। यदि आप न्याय की दृष्टि से देखेंगे तो पायेंगे कि जो सन्धि हुई थी उसको तिब्बत ने कभी स्वीकार नहीं किया और वह कभी चीन के आधीन नहीं रहा। लेकिन चूंकि तिब्बत छोटा सा मुल्क है, वहां की आबादी कम हो गई है, कमज़ोर मल्क है इसलिये आप उसके साथ मत्स्य न्याय से काम लेते हैं और आप चीन से दोस्ती की बात करते हैं कि उसके साथ हमारी बहुत बड़ी दोस्ती हो गई है।

इस वर्तमान सन्धि में मुझे एक बात की खुशी है। यह सन्धि आपने हिन्दी में की है और मैं इसके लिये आपको बधाई देता हूं। इस के शब्द भी मुझे बहुत पसन्द आये, वह बहुत सुन्दर हैं। साथ यह भी है कि आप उन के दो अर्थ नहीं लगा सकते हैं। और यह पहली अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि है जो कि हिन्दी में हुई है। जहां तक शब्दों का सवाल है वहां तक मैं आप की तारीफ करूंगा लेकिन उन शब्दों के द्वारा पहुंचे गए निर्णय के बारे में मैं बहुत खोल कर और बहुत थोड़े वक्त में आपके सामने कुछ कहना चाहता हू। वे शब्द जिनमें यह कहा गया है कि हम दोनों राष्ट्र एक दूसरे पर कभी हमला नहीं करेंगे, पढ़ कर मुझे बहुत खुशी हुई। पर जब से मैंने उसमें यह पढ़ा है कि हम एक दूसरे के घरेलू मामलों में दिलचस्पी नहीं लेंगे तबसे मेरी हंसी नहीं रुक रही है। जिस सिद्धान्त को चीन वाले पालन कर रहे हैं उसके अनुसार दूसरे के घर के मामलों में दस्तन्दाज़ी रुक हो नहीं सकती। उनका जो यंत्र है वह कुछ इसी तरह से काम करता है। इस सम्बन्ध में मैं आपके सामने दो एक मिसाल पेश करूंगा चीन ने जो कुछ लिया है वह रूस से लिया है और हमारी जो समस्या है वह रूस से भी सम्बन्ध रखती है। "प्रवदा" जो रूस का मुखपत्र है उसे आप देखिये। वह कम्युनिस्टों की 'बाइबिल' है। उसके ३ मई के अंक में क्या लिखा है यह मैं पढ़ना चाहता हूं। आप सब लोगों ने देखा होगा कि दिल्ली शहर में १ मई को क्या हुआ और किस तरह का यहां एक जलूस निकला। इसके बारे में जो उस अखबार में लिखा गया है कि हजारों आदमियों का जलूस निकला और उस जलूस में जो नारे लगाए गये उनमें से एक यह था:

"जा नाचियो नालनूयू निएजाविसीमोस्त"

इसका मतलब यह है कि हमें राष्ट्रीय स्वाधीनता मिले। अब हमें देखना है कि वह स्वतन्त्रता क्या है। जैसे हमें आज राष्ट्रीय स्वाधीनता न मिली हो। एक दूसरा नारा है:

"नी काकीख वोयनिखु बाज़ न तेरीतोरिए इंदिए"

यह हमारी मातृभाषा से बहुत मिलती जुलती भाषा है। इसमें कहा गया है कि हम यहां कोई संग्राम का अड्डा नहीं बनने देंगे। अब आप देखें कि हम संग्राम का अड्डा बनने कब दे रहे हैं? यह सिर्फ़ पागलपन की बात हो सकती है और इसके पीछे क्या हो सकता है? तो आप देखें कि प्रावदा में एक खास दृष्टिकोण है। यही उनका दृष्टिकोण है। इसको आप तब तक पूरी तरह नहीं समझ सकेंगे जब तक कि आप तिब्बत के प्रश्न को न लें। कम्युनिस्ट बहुत दिनों से इसी तरह अपना काम करते रहे हैं। अब तक उनको उत्तर में कोई आश्रय नहीं था। मैं एक हिन्दी में कम्युनिस्ट पार्टी की नीति की किताब आज लाया हूं क्योंकि मुझे हिन्दी में बोलना था। इससे मालूम होता है कि चीन जैसी क्रान्ति कम्युनिस्ट यहां भी करना चाहते हैं। चीन में जब तक मंचूको में रूसी फौज नहीं पहुंच गयी तब तक कम्युनिस्ट चीनियों को कोई आश्रय नहीं था। इसमें

लिखा है "इस के अलावा, इस बात को भी हम नहीं भुला सकते कि चीनी चाल सेना जब तक मंचूरिया न पहुंची तब तक बार बार उसे घेरा गया और उसके नेस्तनाबूद कर दिये जाने का उसके सर पर खतरा रहा। वहां पर उसके हाथ में एक औद्योगिक आधार जब आ गया और उसके पिछाये में महान् मैत्रीपूर्ण सोवियत संघ हो गया तब पीछे से हमले की सम्भावना से मक्त होकर चीनी मुक्ति सेना ने अपना पुनः निर्माण किया और वह अन्तिम आक्रमण शुरू किया जिसने उसे विजयी बनाया।"

अब जब से चीनी फौज तिब्बत में आ गयी है तब से हमारे कम्युनिस्टों को एक बड़ा प्रश्रय मिल गया है। और उनका असर कालिमपोंग और उसके आसपास और कलकत्ते तक पर पड़ रहा है। चीन की सेना हमारी सीमा से दो तीन मील पर है। दो तीन वर्ष हुए मैंने देखा था कि उधर के लोग हमारे यहां जासूसी का काम करते थे। हमने उनको तीन हजार टन चावल कलकत्ते के रास्ते ले जाने दिया, लेकिन वह तिब्बती जनता को नहीं मिला। वह चावल चीनी फौजों के काम में लाया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि एक साहब जो तिब्बत से आये उन्होंने मुझ से कहा कि हम लोग पीड़ित हैं। आपके मुल्क ने जो अभी कुछ दिन पहले तक ऐसे कष्ट भुगत चुका है उसे भुला दिया और हमारे दुश्मन को जिससे हम लड़ रहे है आपने चावल ले जाने दिया है। उन्होंने कहा कि आप उनको सहायता दे रहे हैं जो हमको सता रहे हैं और हमारे ऊपर अत्याचार कर रहे हैं। चीनी लोग हमको घरों से निकाल देते हैं और इन्हीं लोगों को आपने कालिमपोंग से होकर आने को सीधा रास्ता दे रखा है।

अंग्रेजों के जमाने में एक बात थी कि वे अपनी सीमा की रक्षा के बारे में अच्छी तरह से समझते थे जो कि हम नहीं कर रहे हैं। यह बहुत गलत बात है। हमारे परराष्ट्र विभाग में आज एक भी ऐसा आदमी नहीं है जो तिब्बती भाषा जानता हो और मेरा ख्याल है कि आज जितना सम्पर्क चीनी दूतावास का कम्युनिस्टों से है उतना हमारे परराष्ट्र विभाग से नहीं है।

मैं उत्तर के पासेज (दरों) के बारे में दो एक बात कहना चाहता हूं। आपने चीन के साथ की सन्धि में जिस तरफ प्रबन्ध किया है उस तरफ से १० प्रतिशत यातायात होता है और नतूला और जेलपाला से जिधर से हमारा ९० प्रतिशत यातायात है उधर कोई प्रबन्ध नहीं किया गया है। जिस प्रकार रूस ने अपने लिए एक लौह प्राचीर बनाया है उसी प्रकार आप चीन के लिए एक तुषार प्राचीर तैयार किये दे रहे हैं। हमारी सीमा पर वे चाहे जो करते रहें पर आपको कोई अधिकार नहीं है।

वह आपके घरेलू मामलों में दस्तन्दाजी कर रहे हैं। मैं कह सकता हूं कि यहां के चीनी दूतावास का जितना सम्बन्ध कम्युनिस्ट और बाहर के लोगों से है उतना आपके परराष्ट्र विभाग से नहीं और यह बहुत गलत चीज है। आप देखें कि भारत-चीन मैत्री संघ का वह यह फायदा उठा रहे हैं कि वे हर तरह से अपने गुप्तचरों द्वारा काम करवा रहे हैं। मैं कहता हूं कि यह हमारे लिए जीवन मरण का प्रश्न है। मैं यह नहीं मानता, न मैं इतना बेवकूफ हूं कि मैं यह समझूं कि कम्युनिस्ट काराकोरम की तरफ से या नातूला की ओर से हम पर आक्रमण कर देंगे। लेकिन सबसे बड़ा नुकसान जो वह कर रहे हैं वह यह है कि एशियायी देशों में स्वाधीन होने की जो प्रेरणा है उसको आज चीन वाले दबा रहे हैं। तिब्बत के साथ हमारा अधिक मेल हो सकता है क्योंकि वह चीन के बनिस्बत हमारे अधिक निकट है। वहां की और हमारी संस्कृति में बहुत साम्य है। हिमालय पहाड़ हमारी संस्कृति की सीमा नहीं है। वह हमारे देश का पहाड़ है यह ठीक है पर वह हमारी संस्कृति की सीमा नहीं है। हमारी संस्कृति का विस्तार कहीं विस्तृत क्षेत्र

[डा० एस० एन० सिंह]

में हुआ। और उन क्षेत्रों में तिब्बत एक ऐसा क्षेत्र है जहां हमारी संस्कृति की बहुत गहरी नींव पड़ी है। चीन के साथ हमारी वैसी मैत्री नहीं हो सकती जैसी कि तिब्बत के साथ हो सकती है। हमें सबसे पहले अपने पड़ौसी के के साथ मैत्री करनी चाहिए और जो दूर है और अपने मतलब का साथी है उससे नहीं।

जब हमारी सरकार ने सितम्बर अक्तूबर सन् १९५० में तिब्बत के मामले में कहा कि अच्छा होता यदि चीन इस मामले को शान्तिमय उपायों से हल कर लेता तो चीन वालों ने सबसे पहला इल्ज़ाम हमारे ऊपर यही लगाया कि हम किसी विदेशी शक्ति का प्रश्रय लेकर यह बात कह रहे हैं। इसी तरीके से जो मैं कह रहा हूं उसके लिये हमारे कम्युनिस्ट भाई कहेंगे कि यह अमेरिकन दृष्टिकोण है। यह बहुत ही लचर दलील है जो कि किसी सच्ची बात को दबाने के लिए दी जाती है। इस तरह की लचर दलीलों से आप किसी सच बात को नहीं दबा सकते। मैं चीन के साथ मित्रता के पक्ष में हूं लेकिन मैं चाहता हूं कि उनकी चाल में हमें नहीं आना चाहिए, खास कर तिब्बत के मामले में। तिब्बत के मामले में और खास कर इस सन्धि के मामले में, जो हमने चीन के साथ की है, मैं देखता हूं कि हम उनकी चालबाज़ी में आ रहे हैं। हम गलत रास्ता अख्तियार कर रहे हैं। हो सकता है कि हमारे परराष्ट्र विभाग के पास और भी कुछ सामग्री हो और जो हम लोगों के सामने नहीं आई है लेकिन जहां तक मुझे पता है मैं उनको बतलाऊं कि मैं हिमालय के पास में ही रहता हूं। अब गर्मियों के दिन आ गये हैं और लोग मानसरोवर और कैलाश जाने की बात सोचते हैं। तो देखना यह चाहिये कि इस सन्धि के बाद से हमारे वहां के लोगों का जाना कुछ पहले की अपेक्षा अवरुद्ध हो रहा है या जाने का मार्ग और अधिक खुल रहा है। मैं समझता हूं कि ये कसौटी होगी इस बात के जानने की कि हमारे चीन के साथ कैसे सम्बन्ध हैं। यह देखें कि इस साल कितने लोग सीमा पार करके उधर जाते हैं इससे पहले तिब्बत जब स्वाधीन था ? युनाइटेड नेशन्स में तिब्बत का जो बयान है और जो सन्धि पहले हुई है, जो यहां की लाइब्रेरी में भी प्राप्य हैं, आप में से उसे कोई भी पढ़ कर देख सकता है, इससे पता चलेगा कि तिब्बत १९५० तक बिल्कुल स्वाधीन रहा है है और १९४९ में तिब्बत में जो चीनी मिशन था उसको भी निकाल दिया गया था। अब आज जो तिब्बत पर चीन का फौजी कब्ज़ा है, उसको बर्दाश्त नहीं किया जा सकता और यह चीज़ ऐसी है जो किसी भी मुल्क के द्वारा पसन्द और बर्दाश्त नहीं की जा सकती। इतिहास बतलाता है कि यह चीज़ ज्यादा दिन तक नहीं चलने पायेगी, जैसा कि इस वक्त चल रही है। हम लोग भी किसी ज़माने में गुलाम थे और हिटलर ने इंगलैण्ड से सन्धि कर रक्खी थी कि हिन्दुस्तान का मामला इंगलैण्ड का अपना घरेलू मामला है और इस मामले में हम कोई दखल नहीं देंगे। इस तरह की मित्रता उसके लिये मैं इस अवसर पर कोई उपयुक्त शब्द नहीं ढूंढ पा रहा हूं ताकि व्यक्त कर सकूं तो भी नम्रतापूर्वक निवेदन करना चाहूंगा कि इस तरीके की मित्रता हमें एक गलत रास्ते की तरफ ले जाती है और उससे हमारे देश का बहुत बड़ा नुकसान होता है। मैं अन्त में एक बार फिर माननीय प्रधान मंत्री और उनकी सरकार से निवेदन करूंगा कि वे इस मामले पर ग़ौर करें और अपनी नीति इस मामले में और अधिक सुदृढ़ बनायें, अगर वह गलत रास्ते पर जा रहे हों तो उसे छोड़ कर सही रास्ते पर आयें।

डा० लंका सुन्दरम् : इस बात को ध्यान में रखते हुए कि हमारी हथियारों का प्रयोग करने की या सैनिक तैयारी करने की कोई

इच्छा नहीं है, हमारे अपने विश्वास तथा विचारधारा को दुहराने, अपनी कमिनाइयां, सफलता तथा असफलतायें बताने से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में बहुत लाभ होता है। जो कुछ इस सदन में कहा गया है और प्रधान मंत्री तथा भारत सरकार ने जिन नीतियों की घोषणा की है और जिन का अनुसरण किया है उन को देखते हुए, मैं यह कह सकता हूं कि पहिले की अपेक्षा आज देश की प्रतिष्ठा अपनी चरम सीमा पर है।

माननीय प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में फ्रांसीसी बस्तियों, तिब्बत समझौते, कोरिया और हिन्दचीन, कोलम्बो का प्रधान मंत्रियों का सम्मेलन, गोआ स्थिति, लंका तथा जापानी युद्ध-बन्दियों के बारे में ब्रिटेन द्वारा हमारे अधिकार दूसरे देश को सौंप देने के विषय में उल्लेख किया। हमें इस बात का खेद है कि प्रधान मंत्री ने इस में उद्जन बम का उल्लेख नहीं किया। उस पर उन्हों ने जो वक्तव्य दिया था हमारा देश उस पर गर्व कर सकता है। प्रधान मंत्री के उस वक्तव्य का पश्चिमी और पूर्वी देशों पर भी अच्छा प्रभाव पड़ा है। कोरिया तथा हिन्द चीन विशेष रूप से हिन्द-चीन के मामले में भारत का कार्य बड़ा सफल रहा है और इस सम्बन्ध में प्रधान मंत्री ने जिस नीति का अनुसरण किया है उस के लिये वह बधाई के पात्र हैं। कुछ महीने पूर्व जब यह वक्तव्य दिया गया था तब इस के परिणामों के बारे में कुछ आशंका सी थी। हमारे प्रधान मंत्री का नाम उन के एशिया तथा अफ्रीका में शान्ति और स्वतन्त्रता सिद्धान्त के कारण विश्व भर में फैल रहा है।

इन बातों के साथ उन्हों ने पाकिस्तान का उल्लेख नहीं किया। पूर्वी पाकिस्तान में जो कुछ हो रहा है हमें उस पर ध्यान देना चाहिये।। परन्तु स्थिति को देखते हुए उचित तो यही है कि प्रधान मंत्री को श्री फजलुल हक से निजी तौर पर बातें करने के लिये उन्हें यहां आमंत्रित करना चाहिये जैसे कि श्री हक डा० राय से बातचीत करने कलकत्ता गये थे। जब पाकिस्तान में जिहाद की मांग की जा रही है और जब पाकिस्तान-अमरीकी सैनिक समझौता भी हो गया है, ऐसे समय में कलकत्ता में दिया गया श्री हक का वक्तव्य बड़ा उत्साहवर्द्धक है।

[पंडित ठाकुर दास भार्गव पीठासीन हुए]

मैं चाहता था कि प्रधान मंत्री काश्मीर के बारे में भी कुछ कहते। आज राष्ट्रपति का एक आदेश निकला है जिस से १९५२ के दिल्ली समझौते का अनुसमर्थन हो गया है और काश्मीर का मामला सदा के लिये तय हो गया है। मुझे आशा है कि इस बाद विवाद के द्वारा दुनिया को यह मालूम हो जायगा कि १९५२ के दिल्ली समझौते को क्रियान्वित करने में जम्मू तथा काश्मीर की जनता की सुनिश्चित तथा घोषित इच्छा के मामले में संयुक्त राष्ट्र संघ या किसी अन्य देश द्वारा हस्तक्षेप किये जाने का कोई प्रश्न नहीं है। अब यह समझौता जम्मू तथा काश्मीर के एकीकरण के मामले में हमारे संविधान का भाग हो जायगा। गत छै वर्षों में हमारे सैनिकों ने बड़ा सराहनीय कार्य किया है। गत वर्ष काश्मीर के प्रशासन कार्य में जो परिवर्तन हुआ है वह भी लाभदायक रहा है और बख्शी सरकार भी प्रशंसा की पात्र है। मैं इस बात में आचार्य कृपलानी से सहमत हूं कि हम बिना मुकदमा चलाये शेख अब्दुल्ला को सदा के लिये जेल में बन्द नहीं रख सकते।

मुझे खेद है कि तिब्बत समझौते के मामले में डा० सिन्हा ने आदर्श और इतिहास का उल्लेख किया। प्रधान मंत्री ने इसी वाद-विवाद में कहा था कि "यह समझौता वर्तमान परिस्थितियों के फलस्वरूप ही किया गया है।" कुछ हालतों में हम ने वहां के दलाई

[डा० लंका सुन्दरम्]

लामा को प्रोत्साहन दिया था और एक शिष्ट मण्डल भारत आया था । हम ने तिब्बत-वासियों को जो आश्वासन दिये थे हमें उन का पालन करना चाहिये । इस के साथ साथ हमें नेपाल में अस्थिर तथा बिगड़ती हुई दशा का भी ध्यान रखना चाहिये ।

वैदेशिक कार्यों पर वाद विवाद के दौरान में म कुछ विदेशी धर्म प्रचारकों के बारे में पहले भी कहता रहा हूं । मैं चाहता हूं कि मेरी इस बात को लिख लिया जाय क्योंकि मैं यह भी चाहता हूं कि प्रधान मंत्री इन प्रश्नों की जांच करें । अलमोड़ा, गढ़वाल तथा टिहरी गढ़वाल ज़िलों में कुछ स्थान 'आन्तरिक रेखा' के अन्दर आते हैं । इस 'आन्तरिक रेखा' को पार कर के भारत तिब्बत सीमान्त पर जाने वाले सभी विदेशियों को इन जिलों के उप आयुक्तों से अनुमति लेनी पड़ेगी । किन्तु धरचुला में एक अमरीकी धर्म प्रचारक मण्डल है तथा कई अन्य स्थानों में भी अमरीकी धर्म प्रचारक मंडल हैं । ये धर्मप्रचारक अपने आदमियों को जौलजीवी के मेले में भेजते हैं । इन्होंने वहां कई स्थानों पर फार्म भी खोल रखी हैं । मेरा सुझाव यह है कि हमें वहां पर पर्याप्त सुरक्षा प्रबन्ध करने चाहियें ।

अन्त में मैं पारपत्र अधिनियम के बारे में कहना चाहता हूं । संयुक्त राष्ट्र मानव अधिकार घोषणा पर भारत ने भी हस्ताक्षर किये थे । किन्तु हमारे संविधान में मूल अधिकारों में ये अधिकार सम्मिलित नहीं हैं । भारत में ऐसा कोई कानून नहीं है जिस के अन्तर्गत विदेशी जाने वाले किसी भारतीय राष्ट्रजन को रोका जा सके किन्तु फिर भी ऐसे हजारों आवेदन-पत्र अस्वीकार कर दिये गये हैं । इसी पर मुझे आपत्ति है ।

ठाकुर लक्ष्मण सिंह चरक (जम्मू व काश्मीर) : साहिबे सदर, दुनिया की सयासत इस वक्त एक बड़े नाजुक मरहले से गुज़र रही है, इसलिये कि दुनिया के बड़े बड़े मुल्क दूसरी जंगअज़ीम के नक्सानात को भूल कर अज़ सरे नौ दो बड़े कैम्पों में बंट गये हैं । इस सिलसिले में आरमामेंट की रेस दिन-ब-दिन ज़ोरों पर चलती जा रही है । एक तरफ एटम बम्ब की ईजाद हो रही है और दूसरी तरफ हाइड्रोजन बम्ब की ईज़ाद हो रही है । ऐसे नाज़ूक हालात में हमारी फारेन पालिसी जिन असूलों पर बनी है, वह है हमारा पुराना इतिहास और वह नसबउलैन जो महात्मा गांधी जी ने इस मुल्क के सामने रखा था कि हम किसी भी पावर ब्लाक के साथ शामिल होना नहीं चाहते । हम अमनो अमान से अपने मुल्क की तरक्की चाहते हैं और जहां तक हो सके अपनी राय इन्टरनैशनल मुआमलात में देना चाहते हैं जिससे दुनियां की बहतरी हो । हमें इस बात की खशी है कि बावजूद तमाम मुश्किलात के हमारे फारेन मिनिस्टर साहब ने मुआमलात को बड़ी अच्छी तरह हल करने की कोशिश की है और वह मुल्क की दुआओं और मबारकबाद के मुस्तहक हैं । और हमें इस बात का पूरा यकीन है कि वह इस मुल्क की किश्ती को इन मरहलों के गरदाब में से निकाल कर अच्छी तरह से कामयाबी के रास्ते पर ले जायेंगे ।

इसी सिलसिले में, जनाब वाला---चूंकि हमारे हमसाये मुल्क पाकिस्तान के प्राइम मिनिस्टर मुहम्मद अली साहब और उन के वज़ीर काश्मीर के मआमले को हर कान्फ्रेंस में, हर जल्सा में और हर मौका पर छेड़ देते हैं, इसलिये---मैं मुनासिब समझता हूं कि रियासत के लोगों की तरफ से इस मुआमला पर कुछ रोशनी डालूं । यह मुआमला इस ईवान में बहुत बार ज़ेर बहस आ चुका है और इन्टरनैशनल फोरम पर बहुत बार इस पर बहस हुई और असल मौजूं ही बदलता रहा । जनाब वाला, इस सिलसिला में मैं इस हाउस के मैम्बरान की याददहानी के

लिये कुछ अर्ज़ करना चाहता हूं। यह थे वह बदकिस्मत हालात जिनमें अक्तूबर १९४७ में रियासत जम्मू और काश्मीर का अलहाक हिन्दुस्तान के साथ हुआ था। पाकिस्तान के काश्मीर पर हमला करने के बाद उस वक्त के महाराजा हरीसिंह जी ने और नैशनल कान्फ्रेंस के लीडर शेख अब्दुल्ला ने हिन्दुस्तान से इस्तदआ की थी कि हमारा अलहाक मंजूर किया जाय और हमें इस नाज़ुक मौके पर मदद दी जाय। हमारा इलहाक हिन्दुस्तान ने मंजूर किया और वह कानूनी तौर से बिल्कुल ठीक था। लेकिन जमहूरियत के ख्याल को कायम रखते हुए हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब ने यह ऐलान किया कि ज्यों ही रियासत के नार्मल हालात हो जायेंगे रियासत के लोगों को मौका दिया जायगा कि वह इस एक्सेशन पर दोबारा गौर करें और प्लैबिसाइट के ज़रिये अपनी राय ज़ाहिर करें ताकि अगर उनसे जल्दबाज़ी में कहीं गलती हो गई हो तो उसको दुरुस्त कर लें। लेकिन जब हिन्दुस्तान की फौजें लड़ रही थीं, तो पाकिस्तान ने रेडर्ज़ के साथ अपनी फौजें भी भेज दीं पर हमेशा यह कहते रहे कि हमारी फौजें शामिल नहीं हैं। फिर हिन्दुस्तान काश्मीर का केस यू० एन० ओ० में ले गया। लेकिन पाकिस्तान बराबर यही कहता रहा कि हमारी फौजें मौजूद नहीं जब तक कि यू० एन० ओ० की एक कमेटी यहां नहीं आई और उसने पाकिस्तान की फौजों को मौका पर लड़ते नहीं देखा तब तक पाकिस्तान ने मंजूर नहीं किया। हमारी शिकायत के बारे में य० एन० ओ० में कुछ नहीं हुआ। कई कमेटियां बनीं। कई साहिबान तशरीफ लाये। और आखिर सात बरस के अरसा में हम क्या देखते हैं कि पाकिस्तान जिसने जम्मू और काश्मीर पर एग्रैशन किया था उसको और हिन्दुस्तान को बराबर का दरजा मिल रहा है। और ग्राहम साहब ने यह फैसला किया कि बहतर यह है हिन्दुस्तान और पाकिस्तान खुद ही आपस में फैसला कर लें। जिस किस्म की रियायतें हिन्दुस्तान ने इस मुआमले में पाकिस्तान को फैसला करने के लिये दीं वह आपको अच्छी तरह मालूम हैं। तारीख इस बात की शाहदत है कि हर मौके पर पाकिस्तान के लीडरों ने यह कोशिश की कि जितनी नरमी से काम ले उतनी ही हुज्जतें उनकी तरफ से बढ़ती जायें। और सब हालात इतने खराब हैं कि समझ में नहीं आता कि यू० एन० ओ० में यह मुआमला कैसे तै होगा। पहले तो हालात कुछ और थे। लेकिन जब से अमरीका और पाकिस्तान का मिलटरी पैक्ट हो गया है हालात और भी नाज़ुक हो गये हैं। और पाकिस्तान के प्राइम मिनिस्टर और उनके सफीर ने खले तौर पर यह कहा है कि अब काश्मीर का मसला बहुत अच्छी तरह से हल हो जायेगा क्योंकि उनको अमरीका की मदद मिल गयी है। हिन्दुस्तान को खुली धमकियां दी जा रही हैं। ऐसे हालात में यह उम्मीद करना कि यू० एन० ओ० से हमको किसी किस्म की इमदाद मिल सकेगी या इन्साफ हो सकेगा गैर मुमकिन दिखाई दे रहा है। जनाब वाला को याद होगा कि सीज़ फायर जनवरी १९४९ में हुआ था। उस दिन से आज तक दोनों तरफ फौजें बैठी हुई हैं। खन्दकें खोदी हुई हैं। यह तो रही मिलिटरी पोज़ीशन। लेकिन रियासत के अन्दरूनी हालात क्या हैं। काश्मीर की नुमायन्दा जमात नैशनल कान्फ्रेंस ने इस बात का ऐलान कर दिया है कि अलहाक मुकम्मल है। इसके अलावा वहां की कांस्टीटुयएंट असेम्बली ने भी इस बात का फैसला कर दिया है कि जो अलहाक सन् ४७ में हुआ था वह हर तरह से मुकम्मल है। तो अब जनाब वाला प्लैबीसाइड का कोई सवाल नहीं रहता। इसके अलावा प्लैबीसाईट का वादा हिन्दुस्तान की गवर्नमेंट ने रियासत के लोगों से किया था। पाकिस्तान के लोगों से नहीं किया था। और अगर जम्मू और काश्मीर के बारे में कोई फैसला कर सकता है तो वहीं के लोग कर सकते हैं। यू० एन० ओ०

[ठाकुर लक्षमण सिंह चरक]

या और कोई अथारिटी हम पर वह फैसला आयद नहीं कर सकती । और जहां तक हम लोगों का ताल्लुक है हमने पूरे तौर पर फैसला कर लिया है और मैं इस ईवान से और इस गवर्नमेंट से कहता हूं कि अब इन हालात को खत्म कीजिये । हम समझते हैं कि प्रेज़िडेंट साहब के कल के आर्डर से बहुत से मरहले तै हो जायेंगे । लेकिन अभी हमारे सर पर यह तलवार लटक रही है कि न मालम यू० एन० ओ० प्लैबिसिट के बारे में क्या तै करेगी । इस वजह से रियासत का एकानामिक डिवलैप-मेंट रुका हुआ है । और कारोबार अच्छी तरह से नहीं चल रहा है । और जम्मू और काश्मीर में जो शरारती अनस्सर हैं जब तक यह गैर यकीनी हालत कायम रहेगी उस अनस्सर को मौका रहेगा कि एक या दूसरे बहाने बना कर शरारत पैदा करता रहे । इसलिये मैं यह इस्तदआ करता हूं कि इन हालात को देखकर, और कान्स्टीट्यएंट एसेम्बली के फैसले को समझ कर और लोगों की ख्वाहशात को सुन कर यह जुम्मावारी हिन्दुस्तान पर आयद होती है कि जो दोस्ती का हाथ सन् ४७ में काश्मीर के लीडर ने पेश किया था, और जिस दोस्ती की बिना पर हिन्दुस्तान ने करोड़ों रुपया काश्मीर पर खर्च किया, और हज़ारों जवानों ने काश्मीर को बचाने के लिए अपनी जानें दीं, उसको मुकम्मल कर दिया जाय और रियासत के लोगों को बतला दिया जाय कि अपने काम काज में लग जाओ, अपने एकानामिक डिवैलपमेंट में लग जाओ और यह जो फैसला हो चुका है इसको हम पूरे तौर पर काबू करते हैं।

श्री थानू पिल्ले (तिरुनेलवेली) : वैदेशिक कार्यों पर वाद-विवाद के दौरान में विरोधी दल के सदस्य हमारी इस बात की आलोचना करते हैं कि ऐशिया के देशों के मामले में न तो साम्यवादी और न कोई दूसरी शक्तियां हस्तक्षेप करें । साम्यवादी दल की विचारधारा रूस और चीन से निकल रही है और पूंजीवाद की विचारधारा आंग्ल अमरीकी गुट्ट से प्रचारित की जा रही है तथा हम इन दोनों के बीच फंस गये हैं । किन्तु हम इन में से किसी भी गुट्ट के साथ नहीं मिलना चाहते । यदि हम अपनी विचार धारा का ही अनुसरण करें और गांधी जी के बताये हुए मार्ग पर चलें तो इन में से बहुत सी बुराइयां दूर हो जायेंगी । किन्तु यहां एक ऐसी विचारधारा है जो हमारे देश की उन्नति के लिये किये जाने वाले सभी प्रयत्नों को विफल करना चाहती है । एक और विचार धारा हमारे देश में आ रही है और वह है पूंजीवाद की भावना । इस पूरे देश में भड़काने वाले लोग फैले हुए हैं और वे अपने ढ़ंग से काम करते हैं। हम अपने भाषण में संयम से काम लेते हैं । किन्तु जब हम अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर चर्चा करते हैं विरोधी दल बहुत अनुचित तरीके से हमारी आलोचना करता है । वह दल कहता है कि वह अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर हमारे दृष्टिकोण का समर्थन करता है फिर यह अनुचित अलोचना क्यों की जाती है हम अपनी विचार धारा के ही अनुसार आगे बढ़ना चाहते हैं ।

इस के पश्चात् हमारे प्रधान मंत्री ने लंका की चर्चा की । यह समस्या भारतीय उदभव के लंका-निवासियों को ही प्रभावित नहीं करती बल्कि, यदि लंका सरकार इस तरह से लोगों को निकालती रहे तो उस से हमारे देश की शान्ति एवं व्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ेगा । अभी कुछ दिन हुए मद्रास की विधान सभा में सदस्यों ने अपने विचार प्रगट करते हुए कहा था कि यह एक बड़ी गम्भीर समस्या है । मैं चाहता हूं कि सरकार शीघ्र से शीघ्र इस ओर ध्यान दे । मद्रास राज्य में पहले ही से कुछ लोग साम्प्रदाय-

वाद और भाषा के प्रश्न का सहारा ले कर गड़बड़ फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस मामले का सम्बन्ध भी विशेषत: दक्षिण भारत के लोगों से है, इसलिये यह आवश्यक है कि केन्द्रीय सरकार जल्दी से जल्दी कदम उठाये ताकि देश के किसी भाग में शान्ति भंग न हो।

मैं यह मानता हूं कि हमें लंका सरकार की कठिनाइयों को समझना चाहिये, परन्तु लंका सरकार को भी चाहिये कि वह समस्या के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया अपनाये और इस बात का अनुभव करे कि भारत के लोग इस विषय में बहुत अधिक चिन्तित हैं। हम उन के साथ कोई झगड़ा या लड़ाई करना नहीं चाहते परन्तु उन्हें यह अवश्य बता देना चाहते हैं कि जिस प्रकार से वे कुछ निश्चित बातों को क्रियान्वित कर रहे हैं वह वांछनीय नहीं हैं। हम ने इस बात को मान लिया है कि भारत के वे लोग जो भारतीय बनना चाहते हैं, उन्हें रजिस्टर किया जाये और एक प्रमाण-पत्र दिया जाये कि वे भारतीय हैं। यदि यह चीज़ एच्छिक है तो हमें कोई आपत्ति नहीं। परन्तु जब लोग नागरिकता के लिये आवेदन करते हैं और उन के आवेदन-पत्रों को फेंक दिया जाता है और उन्हें भारतीय नागरिकता के लिये आवेदन करने पर मजबूर किया जाता है, तो एक दूसरा ही मामला खड़ा हो जाता है।

यदि लंका अपनी सुविधानुसार संविधान में परिवर्तन कर सकता है, तो हमें भी अपने संविधान में परिवर्तन करना पड़ सकता है। यदि किसी भारतीय ने किसी अन्य देश की राष्ट्रीयता के लिये आवेदनपत्र भेजा है, तो वह भारत का राष्ट्रीय नहीं रह सकता। और उसे दूसरा अवसर नहीं दिया जा सकता यदि हमारी ऐसी धारणा बन जाती है तो हमारी समस्या आसानी से हल हो जायेगी। तब यह समस्या पूर्ण रूपेण भारतीय नस्ल के लंका निवासियों की ही रह जायेगी उन भारतीयों की नहीं जिन को बाहर निकाला जा सकता है। वे भले लोग हैं कि-तु यदि वे लड़ना प्रारम्भ कर देते हैं या वहां की अन्य शक्तियों से मिल जाते हैं तो लंका की सरकार के लिये बड़ी कठिन स्थिति उत्पन्न हो जायेगी। हम ऐसा नहीं होने देना चाहते हैं इसी कारण एक बस्ती के लिये हम अधिक इच्छुक हैं। यदि लंका की यह समस्या आपस में हल नहीं हो जाती तो प्रतिक्रियावादी शक्तियों को अवसर मिल जायेगा और वहां की शान्ति नष्ट हो जायेगी। यदि वे हमारी सम्मत्ति स्वीकार कर लेते हैं तो उन की समस्या तत्काल ही हल हो जायेगी।

अमरीका डालरों तथा बन्दूकों की सहायता से जब सफल नहीं हो सका तो उस ने हमारी बदनामी करनी प्रारम्भ कर दी। इस का परिणाम और भी भयंकर निकल सकता है। आज भारत अन्तर्राष्ट्रीय जगत में अपने सम्मान के प्रति अधिकाधिक सजग होता जा रहा है। यह केवल कोई एक देश-समूह नहीं है जो हमारे विरुद्ध विष उगल रहा है वरन्, यू०एन०ओ०, रूसी तथा चीनी गुट तथा आंगल अमरीकी दल भी हम को बुराभला कह रहा है। अत: मामला कुछ आगे बढ़ने तथा गम्भीर स्थिति उत्पन्न होने के पूर्व ही इस समस्या को हल करना आवश्यक है।

श्री टी० के० चौधरी : मैं आज आतंक उत्पन्न करने वाले कार्यों तथा बड़ी बड़ी शक्तियों द्वारा शक्तिशाली दलों के निर्माण का विरोध करने के लिये इस विवाद में भाग ले रहा हूं। हमारे देश की वैदेशिक नीति ऐसी है जिस में दिखावा इस बात का किया जाता है कि संसार की आपसी तनातनी एवं खिंचाव को कम किया जाय तथा शान्तिपूर्ण वातावरण उत्पन्न किया जाये। परन्तु वास्तव में इस नीति से उस षडयंत्र की पुष्टि होती है जो कि बड़ी बड़ी शक्तियों सताये के हुए

[श्री टी० के० चौधरी]

लोगों की स्वतन्त्रता का अपहरण करने तथा एशियाई देशों में चलने वाले स्वातन्त्र्य संग्रामों को अपनी सत्ता बढ़ाने की नीतियों में सहायता करने के लिये रचा है । यही कारण है कि अभी हाल में भारत सरकार की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में किये गये कथोपकथनों का मास्को के कामरेड मलिनकोव तक ने उल्लेख किया है और कहा है कि विश्व स्वातन्त्र्य के लिये तथा विशेषकर एशियाई देशों के स्वातन्त्र्य तथा शान्ति के लिये यह नीति बड़ी लाभदायक है ।

१२ मध्यान्ह

भारत सरकार की वैदेशिक नीति के सम्बन्ध में सरकार के प्रमुख वक्ता पंडित नेहरू ने जो बातें कहीं उस से सदन के इस ओर के कामरेड सामूहिक रूप से इतना प्रसन्न हुए कि उनका कांग्रेस तथा पंडित नेहरू से प्रेम-भाव बहुत बढ़ गया है ।

अभी हाल ही में पाक-अमरीकी सैनिक गठबन्धन के विरुद्ध होने वाला राष्ट्रीय सम्मेलन इसी का एक उदाहरण है । यदि हम कोलम्बो सम्मेलन तथा कोरिया, हिन्द चीन तथा अन्य बातों के सम्बन्ध में उस सम्मेलन के निर्णयों को छोड़ दें जिन का भारत से कोई प्रत्यक्ष तथा तात्कालिक सम्बन्ध नहीं है तो हम देखेंगे कि अन्य सभी बातों के सम्बन्ध में चाहे वह फ्रांसीसी बस्तियां हों या गोआ हो, या तिब्बत हो या जापानी युद्ध-बन्दियों को मुक्त किये जाने का प्रश्न हो, इन सब के सम्बन्ध में हमारी वैदेशिक नीति ऐसी है कि हमारी समस्यायें यथावत् बनी हुई हैं । कोलम्बो सम्मेलन के साथ ही साथ जनेवा सम्मेलन भी हो रहा था । यदि हम कोलम्बो सम्मेलन के निर्णयों पर विचार करें तो हमें सोचना पड़ेगा कि हमने जो काम किया है क्या वह हमारा ही है अथवा केवल दूसरे का काम करने के लिये हमने अपने हाथ जलाये हैं ।

जहां तक मुझे स्मरण है कोलम्बो सम्मेलन का प्रस्ताव पाक-अमरीकी सैनिक सन्धि की समस्या के उठ खड़े होने के बाद ही आया था । इसलिये हमारा विचार था कि इस सम्मेलन में उन बातों पर विचार किया जायगा जिन के सम्बन्ध में स्वयं पंडित नेहरू ने इस गठबंधन का उल्लेख करते हुए कहा था । मेरी समझ में नहीं आता कि फिर क्यों उन बातों को छोड़ कर जिन से हमारे देश का बहुत बड़ा सम्बन्ध था हमने उन बातों पर विचार करना प्रारम्भ किया जिन को ले कर इंगलैण्ड तथा अमरीका के साम्राज्यवादों में मतभेद उठ खड़ा हुआ था ।

स्टेट्समैन समाचारपत्र के सम्पादक ने कोलम्बो सम्मेलन के निर्णय का हवाला देते हुए ठीक ही कहा है कि कोलम्बो सम्मेलन में हिन्दचीन के प्रति जो दृष्टिकोण अपनाया गया है उस से विशेषकर इंगलैंड की सरकार को प्रसन्नता हुई है तथा श्री एडेन के हाथ मज़बूत हुए हैं । इसीलिये मैं कहता हूं कि कोलम्बो सम्मेलन में हम ने जो कुछ किया है उस में हमारी भलाई नहीं है बल्कि हम ने किसी और की भलाई के लिये इंगलैंड और अमरीका के आपसी झगड़े में हाथ डाला है ।

स्वामी रामानन्द तीर्थ (गुलबर्गा) : हमारी वैदेशिक नीति कुछ मूल सिद्धान्तों पर आधारित है । उस से यह तो सिद्ध हो चुका है कि हम ने जो कुछ किया है, या करने का प्रयत्न कर रहे हैं वह विश्व शान्ति की उन्नति के हित में है । अब हमें उन भावनाओं तथा विचारों को भी जानना चाहिये जिन से हमें ऐसी नीति के लिये प्रोत्साहन मिलता रहता है

हमारी वैदेशिक नीति अमरीकी अथवा रूसी गुट पर आधारित नहीं है। जिन लोगों की निगाहें रूस की ओर लगी हुई है,वे अपने देश की वैदेशिक नीति की सराहना नहीं कर सकते हैं। भारत की वदेशिक नीति के सम्बन्ध को मैं कह सकता हूं कि वह निष्पक्ष है और किसी भी गुट के इशारे पर आधारित न हो कर सभी गुटों के दुराशय को दूर करने का प्रयत्न करती है ।

अधिक अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने से कोई लाभ नहीं है । आज अधिकांश देशों की नीति अस्त्रों शस्त्रों में वृद्धि करने की है । भारत अपना कोई अलग गुट नहीं बनाना चाहता है वह तो बस इतना ही चाहता है कि उसका इतना प्रभाव बना रहे कि जिस से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में शान्ति स्थापित रह सके । हमारे देश की वैदेशिक नीति में जो विचार निहित है वह अमरीका या रूस किसी भी देश में नहीं मिल सकता । अतः आने वाले करोड़ोंर्ण लोग भारत की इस वैदेशिक नीति को स्मरण रखेंगे ।

हमारे प्रधान मंत्रो ने स्पष्ट कह दिया है कि हम निश्चित समझौता चाहते हैं जो सहकारिता, एकता की भावना तथा इस विचार से किया गया है कि शान्ति को ध्यान में रख कर ही राष्ट्रों में सम्बन्ध स्थापित रह सकता है । अतः हमारी भावना ही उन शक्तिशाली गुटों से भिन्न है ।

रूस अस्त्रों-शस्त्रों से अपनी शक्ति बढ़ाना चाहता है । क्या यह साम्राज्यवाद नहीं है ? यदि हाइड्रोजन बम की सहायता से आप कम्युनिस्ट विचार धारा लादना चाहते है तो यह साम्राज्यवाद का एक दूसरा स्वरूप होगा । भारत किसी पर भी अपनी विचार-धारा लादना नहीं चाहता । हम चाहे कोरिया के मामले पर बात करें अथवा हिन्द-चीन की समस्या पर या घरेलू मामलों के सम्बन्ध में लंका से अपने सम्बन्धों के विषय में चर्चा करें, किन्तु हमारी नीति सदैव समान ही रही है ।

किसी भी देश की नीति कुछ मूल सिद्धान्तों पर आधारित होती है जिस का उस देश का सर्वशक्तिमान दल निर्धारित करता है । राष्ट्रीय नीति वह है, जो राष्ट्र के हित को आगे बढ़ाती है, चाहे कोई विशेष दल उस से सहमत हो अथवा नहीं । राजनीतिक दलों की नीतियों में शीघ्र ही परिवर्तन किये जा सकते हैं किन्तु देश की नीति बहुत कुछ स्थिर रहती है । अतः आचार्य कृपलानी का यह कहना गलत है कि भारत की वैदेशिक नीति केवल दल की नीति है, राष्ट्रीय नीति नहीं । हमारे प्रधान मंत्री ने जो नीति निर्धारित कर दी है वही ठीक नीति है और उसी से विश्व में शान्ति स्थापित हो सकेगी ।

वास्तव में काश्मीर के लोगों ने अपना भविष्य सवयं बनाने की इच्छा प्रकट की है क्योंकि वहां के लोगों ने अपने अधिकार समझ लिये हैं किन्तु हमें यह बात अपने ध्यान में स्पष्ट रूप से रखनी चाहिये कि वहां के लोगों ने सदैव के लिये यह निश्चित कर लिया है कि वे भारत के साथ ही रहेंगे और उस के सुःख दुःख के साथी बनेंगे : मैं नहीं चाहता कि हमारी सरकार जम्मू तथा काश्मीर का भाग्य-निर्णय जनमत के द्वारा करने के लिये कहे । यदि जनमत लिया भी गया तो मुझे विश्वास है कि काश्मीर भारत में ही मिलना चाहेगा । किन्तु लोग जो कुछ निश्चय एक बार कर लेंगे उस में फिर परिवर्तन नहीं हो सकेगा ।

श्री एस० एन० दास (दरभंगा मध्य) : सभापति जी, हिन्दुस्तान की वैदेशिक नीति की सफलता इस एक बात से पूरी तरह स्पष्ट हो जाती है कि जब कोरिया में युद्ध छिड़ गया तो ऐसा मालूम पड़ा कि वह संसार का तीसरा युद्ध आरम्भ करके रहेगा, लेकिन भारत ने

[श्री एस० एन० दास]

उसके सम्बन्ध में अपना जो रुख अख्तियार किया और हिन्दुस्तान के प्रधान मंत्री ने जो नीति इस सम्बन्ध में निर्धारित की, उससे अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में युद्ध के जो बादल मंडरा रहे थे वह छिन्न भिन्न हो गये और ऐसा मालूम पड़ता है कि अब तीसरा युद्ध शायद न हो। लेकिन इसके लिये कोई भी भविष्यवाणी नहीं कर सकता। जब हम दुनिया के जो बड़े दो गुट हैं उनकी नीति की तरफ ध्यान देते हैं तो मालूम होता है कि बावजूद इस बात के हिन्दुस्तान जिसका भौगोलिक दृष्टि से और अनेक दृष्टि से एशिया में एक महान् स्थान है, और जिसका दृढ़ संकल्प संसार में शान्ति कायम रखने का है फिर भी जो दुनिया के दो महान् गुट हैं उन गुट्टों की नीति के कारण कब संसार में लड़ाई छिड़ जाय, इसके लिये निश्चित तौर से कोई बात नहीं कही जा सकती है। अमरीका के राजपुरुष और संसार के दूसरे अधिकांश राजपुरुष हैं आज की समस्याओं पर विचार किस तरह से करते हैं उसका अगर मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया जाय तो मैं समझता हूं कि मनोविज्ञान के जानने वाले अच्छी तरह से इस बात को बता दगे कि उन राजपुरुषों के व्याख्यानों में, योजनाओं में और जो सम्मेलन और सभाएं इत्यादि वे किया करते हैं, उनकी तह में क्या बात छिपी हुई है ?

इतिहास का लिखने वाला जब कभी भी आज का इतिहास लिखेगा तो बतायेगा कि दुनिया की एक ऐसी भी हालत थी कि जिस हालत में अगर तत्कालीन राजपुरुष लोग चाहते तो दुनिया के लोग बहुत ही अमन और आज़ादी से रह सकते थे। लेकिन आज आदर्श की ओट में आदर्श का आवरण देकर युद्ध के लिये तैयारियां की जाती हैं ऐसा हम देखते हैं मेरा खयाल है आगे आने वाली पीढ़ी आज के राजपुरुषों को इस नीति के लिए बिना कोसे हुए नहीं रहेगी।

हिन्दुस्तान एक नया प्रजातन्त्र है, इस नए प्रजातन्त्र ने अभी थोड़े ही दिन हुए अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक प्रवेश किया है। और आज दो महागुटों के विभिन्न प्रलोभनों के रहते हुए हिन्दुस्तान जो नीति अपने सामने रख रहा है, मैं समझता हूं कि शायद ही कोई दूसरा देश ऐसी परिस्थिति में इस नीति को धारण कर सकता था। यह हिन्दुस्तान के इतिहास, हिन्दुस्तान की संस्कृति, हिन्दुस्तान की परम्परा और महात्मा गांधी के नेतृत्व का ही फल है कि आज ऐसे दो महा गुटों के बीच में जिनके पास अस्त्र शस्त्र और समर के दूसरे साधन अधिक से अधिक मात्रा में हैं, रहते हुए भी हमने स्वतन्त्र और क्रियाशील तटस्थता की नीति अपने सामने रखी है और ऐसा करना प्रशंसा के लायक अवश्य है। क्या कारण है कि इस नीति पर जो कि शान्ति की नीति है, जो सामुहिक शान्ति ला सकती है और जिसके बारे में हमारे माननीय प्रधान मंत्री जी बराबर कहते आये हैं कि हम चाहते हैं कि दुनिया में सब लोग शान्ति से रहें, कोई एक दूसरे के कार्य में हस्तक्षेप न करे, न तो जो रूस का गुट है वह विश्वास करता है और न जो अमरीका का गुट है वही विश्वास करता है ? अमरीका डरता है कि हिन्दुस्तान जैसा नया परन्तु बड़ा प्रजातन्त्रीय देश तथाकथित स्वतन्त्र देशों के गुट को छोड़ कर कहीं दूसरे गुट के साथ न हो जाय और इस प्रकार साम्यवाद का विस्तार सारे एशिया में न हो जाय। मैं कहता हूं, और यह मेरा निजी खयाल है, कि साम्यवाद का जो आदर्श है वह कोई ऐसा आदर्श नहीं है जिससे घृणा की जाय। हां, साम्यवाद लाने का जो तरीका है, जो सिद्धान्त है, जो कि रूस और दूसरे देश आज अख्तियार कर रहे हैं, उससे हमारा गहरा

मतभेद है । लेकिन जो साम्यवाद का ऊंचा आदर्श है कि हर एक देश, हर एक व्यक्ति शोषण से मुक्त हो, किसी के विचार पर किसी का दबाव न हो, हर एक स्वतन्त्रतापूर्वक अपने देश में, अपने समाज में, शान्तिपूर्वक रह सके, उस आदर्श को कौन नहीं मानता ? फिर भी मैं कहना चाहता हूं कि आज हिन्दुस्तान के ऊपर न रूस का विश्वास है और न अमरीका का विश्वास है । हम चाहते भी नहीं हैं कि कोई अनुचित नीति अख्तियार कर उनका विश्वास प्राप्त करे । हम अपनी स्थिति को देख कर, दुनिया की स्थिति को देख कर, जहां हमारा स्थान है और एशिया में दूसरों के स्थान को देख कर अपनी नीति का निर्धारण करते हैं । लेकिन, सभापति जी, आश्चर्य तो तब होता है जबकि हम जो कुछ कहते हैं या हमारे माननीय मंत्री जी जब नीति की घोषणा करते हैं उसके सम्बन्ध में देश और विदेश के अखबारों को पढ़ने से मालूम होता है कि और मुल्कों को हमारी नीति पर विश्वास नहीं है । अमरीका को भी हमारे ऊपर विश्वास नहीं है और साथ ही साथ रूस भी हमारी बातों पर बहुत अंशों में विश्वास नहीं करता ।

जब कोरिया के सम्बन्ध में हमने अपना रुख अखत्यार किया और जब यूनाइटेड नेशन्स के अन्दर भारत ने उसके सम्बन्ध में अपना प्रस्ताव रक्खा उस समय चीन और रूस के रेडियो ने कैसी कैसी बातें कही थीं वह मुझे याद हैं । यह बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि कोरिया के सम्बन्ध में जो नीति हमने अख्त्यार की थी उसको अमरीका ने कभी स्वीकार नहीं किया और अमरीका का सन्देह उस समय से बढ़ता ही चला जाता है । और इसका फल यह है कि छोटे छोटे मामलों में भी अमरीका यह कहता है कि हिन्दुस्तान हमारे साथ नहीं है । इस लिये अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में जब कभी भी इस बात की आवश्यकता महसूस की जाती है कि हिन्दुस्तान को बलाया जाय तो अमरीका को वह प्रस्ताव पसन्द नहीं आता है । आज एशिया के सम्बन्ध में जेनेवा में सम्मेलन हो रहा है । हम नहीं चाहते हैं और हमारे प्रधान मंत्री भी नहीं चाहते हैं, और हम इसके लिये उत्सुक भी नहीं हैं कि हमें उनमें अवश्य बुलाया जाय । लेकिन एशिया के सम्बन्ध में जेनेवा में सम्मेलन हो, वहां पर एशिया के सवालों पर विचार हो और उसमें हिन्दुस्तान और एशिया के कई देशों को न बुलाया जाय, इससे मालुम होता है कि वहां किस तरह की अस्वाभाविकता फैली हुई है । अगर भारत आज अमरीका के साथ होता, अगर हम अमरीका की नीति के पूरे हक में होते, अमरीका के बताये हुये रास्ते को ग्रहण कर लेते, तो अमरीकी गुट में हमारा स्थान रहता और अमरीका वहां हमारा स्वागत करता । हम नहीं चाहते हैं, भारत नहीं चाहता है कि दोनों गुटों में से किसी की नीति को आंख मूंद कर अपनाये । वे कहते हैं कि शान्ति के लिये सब कुछ हो रहा है । एक कहता है कि हम इसलिये प्रयत्न करते हैं कि हम चाहते हैं कि दुनिया में सामूहिक सुरक्षा कायम रहे, शान्ति कायम रहे, दूसरी ओर रूस कहता है कि, भाई, हम चाहते हैं कि दुनिया से शोषण बन्द हो, एक जाति दूसरी जाति का शोषण न करे । इन दोनों आदर्शों के बीच में छिपी हुई है साम्राज्यवादी नीति यह उनके व्यवहारों से स्पष्ट हो जाता है । आज दोनों के पास धन है, दोनों के पास सम्पत्ति है, दोनों के पास फौज है, अणु शक्ति है, हाइड्रोजन बम हैं, और आज दोनों गुट चाहते हैं कि दुनिया के दूसरे देशों को बढ़ने ही न दें, उनको दबा कर, जबर्दस्ती अपने साथ रखें । भारत इसके बीच में खड़ा होकर कहता है कि भले ही हमारे पास शक्ति न हो, सैनिक शक्ति न हो, फिर भी हम समझते हैं कि दुनिय की मौजूदा हालत के लिये जो आदर्श हमने सामने रक्खा है वह अच्छा है । अमरीका इस नीति को पसन्द नहीं करता और हमारे ऊपर दबाव डालता है ।

[श्री एस० एन० दास]

पाकिस्तान को सैनिक शक्ति और अस्त्र शस्त्र की मदद देने की धमकी देता है। इसका मतलब क्या है ? मेरी तुच्छ सम्मति में अमरीका चाहता है कि जिस किसी तरह हो भारत उसके साथ हो जाय।

हिन्दुस्तान का विभाजन होने के बाद, पाकिस्तान हमारे साथ एक नया देश कायम हो गया, जिसको हम ने पसन्द किया और अब भी पसन्द करते हैं। लेकिन आज पाकिस्तान दूसरे देश के हाथ के हथियार की तरह से, गोटी की तरह से काम कर रहा है। उससे गोटी की तरह काम लेकर अमरीका समझता है कि अगर हम पाकिस्तान को मदद देंगे तो हिन्दुस्तान डर कर हमारी नीति का समर्थन करेगा। मैं समझता हूं कि हिन्दुस्तान की सरकार या हिन्दुस्तान के लोग इस दबाव में आने वाले नहीं हैं। अमरीका को भी यह समझ लेना चाहिये। मैं नहीं समझता कि उसका यह नारा कहां तक स्वतन्त्र देश का नारा है कि साम्यवादी गुट के अन्दर रहने वले लोगों के लिय वह कहता है कि वे स्वतन्त्र नहीं हैं और अमेरिका के साथ रहने वले जितने देश होंगे वे सब के सब स्वतन्त्र होंगे। उसकी यह भावना कहां तक सही है यह मैं नहीं कह सकता। यह सिर्फ नारा है, इस में कोई तथ्य नहीं है तथ्य तो यह है कि आज अगर अमरीका चाहता है कि दुनियां में शान्ति हो तो जिस तरह से वह आर्थिक क्षेत्र में एशिया के मुल्कों को इस तरह की मदद देना चाहता है ताकि उनका लीविंग का स्टैन्डर्ड बढ़ सके, वहां जो क्षोभ तथा असन्तोष के कारण हों वह दूर हो सकें, यह एक अभिनन्दनीय चीज़ है, उसमें उसका कोई स्वार्थ नहीं होना चाहिये। परन्तु हम देखते हैं कि आज उसकी आर्थिक सहायता में यह आशा रहती है कि जिस देश को हम आर्थिक सहायता देंगे वह देश हमारे साथ रहेगा। ऐसी हालत में मैं समझता हूं कि आज हिन्दुस्तान को अमरीका से सहायता की आशा करना व्यर्थ है। आज एशिया के दूसरे मुल्क या दुनिया के दूसरे मुल्क धन के दबाव में या परिस्थितिवश अमरीका के रास्ते पर चलने के लिये भले ही तैयार हो जायें, लेकिन मेरा अपना ख्याल है और हो सकता है कि समर क्षेत्र में हम उनका मुकाबला न कर सकें, लेकिन हिन्दुस्तान की ३६ करोड़ जनता का जहां तक मुझे अनुभव है, जबकि हम अंगरेज़ों की गुलामी से रिहा हो गये हैं, तो हम दुनिया या एशिया में किसी दूसरे देश के नए प्रकार के साम्राज्यवाद को कभी कबूल नहीं कर सकते हैं। इसलिए जब अमरीका कहता है कि हम दक्षिण पूर्वी एशिया में एक ऐसा समूह कायम करना चाहते हैं जो आपस में संगठित हो और जो एक दूसरे की सहायता करता हुआ दक्षिण पूर्वी एशिया में साम्यवाद के बढ़ते हुए खतरे को रोके, तो मैं समझता हूं कि यह उसकी एक गलतफहमी है। अगर वह चाहता है कि दुनिया में साम्यवाद का प्रचार न हो और अगर उसकी नजर में साम्यवाद का प्रचार खराब है तो उसको रोकने के लिए भी यह ज़रूरी है कि दुनिया के और देशों के साथ उसी तरह का व्यवहार करे जैसा कि व्यवहार स्वतन्त्र देशों के साथ किया जाना चाहिए। मैं तो यह कहूंगा कि अमरीका और रूस के जो ये गुट हैं इनका दुनिया पर क्या असर हो रहा है। गांवों के अन्दर साधारण लोग स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी जीवन व्यतीत करते हैं। लेकिन जब गांव में कोई ज़बरदस्त महाजन आ जाता है जिसके पास बहुत धन होता है तो उसका बहुत प्रभाव हो जाता है और साधारण लोगों को वह अपने धन के बल पर दबा कर रखना चाहता है। इसी तरह से आज अमरीका और रूस के गुट अपनी शक्ति के बल से अपने विज्ञान के बल से और अपने एटम बम और उद्जन बम के बल से छोटे छोटे देशों को दबा कर रखना चाहते हैं।

पहले वह प्रलोभन देते हैं और कहते हैं कि हम आप लोगों को आर्थिक सहायता पहुंचाना चाहते हैं ताकि अपने जीवन का मापदंड ऊंचा हो सके, आपका स्वास्थ्य अच्छा हो सके। बात बहुत अच्छी है। उनकी उदारता के लिए उनको बधाई है। लेकिन अगर इस उदारता के साथ और स्वास्थ्य सुधार और दूसरी दूसरी सहायताओं के नाम पर अगर उनके दिल में इस तरह की आशा है कि जो हम कहेंगे वही वह देश करेंगे तो मैं समझता हूं कि उस आर्थिक सहायता का या और भी जो किसी प्रकार की सहायता दी जाती है उसका कोई असर नहीं रहता। सभापति जी, मैं ज्यादा वक्त नहीं लेना चाहता। मैं सिर्फ यह कहना चाहता हूं कि आज जो दोनों गुटों की नीति है और जिन आदेशों की वे समय समय पर चर्चा करते हैं वे आदर्श उनकी नीति से वास्तव में पूरे होने वाले नहीं हैं। दोनों का यह ख्याल है कि दुनिया का कोई देश स्वतन्त्रतापूर्वक अपनी नीति निर्धारित न कर सके और जैसे हम चाहते हैं वैसे विचार करें संसार की शान्ति के लिए घातक है। इसलिए मैं अपनी सरकार की क्रियाशील तटस्थता की नीति का समर्थन करता हूं। जब जहां मौका मिलेगा अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेकर हम अपनी नीति की घोषणा इसी प्रकार करते रहेंगे और जिस देश की नीति जब हमको ठीक मालूम होगी उसका समर्थन करेंगे बिना इस बात का ख्याल किय हुए कि किसी को हमारा ऐसा करना अच्छा लगता है या नहीं। हम इस नीति को मानने के लिए तैयार हैं। इन शब्दों के साथ जो हमारी सरकार की नीति है उसका मैं हृदय से समर्थन करता हूं।

श्री वी० जी० देशपांडे (गुना) : भारत के प्रधान मंत्री ने आज प्रातःकाल जो प्रस्ताव सदन के सम्मुख रहखा है और जो विचारधारा सदन के सम्मुख रखी है उसके लिए जिस प्रकार अन्य सदस्यों ने किया है उस प्रकार से मैं पुष्प वर्षा करने की मनःस्थिति में नहीं हूं। मैं जानता हूं कि मेरे बहुत से मित्र इस सदन में हैं कि जो समझते हैं कि हमारे प्रधान मंत्री की इस तरह की नीति के कारण हिन्दुस्तान का नाम दुनिया में बहुत ऊंचा हुआ है। दुनिया में हम कितने ऊंचे बढ़ गये हैं मुझे तो इसका पता नहीं है। मैं नहीं जानता कि इस ऊंचाई को देखने के लिए तेन सिंह की आवश्यकता होगी मैं तो वहां नहीं पहुंच सकता। मैं तो देखता हूं कि दुनिया में हमारा यह स्थान है कि अंग्रेज़ और अमरीका तो हमको चाहते हैं नहीं। हम शिकायत करते हैं कि सेनफ्रांसिस्को समझौते के आधार पर जापान युद्ध अपराधियों के बारे में हमसे पूछा नहीं जाता। अमरीका हमारे खिलाफ है, रूस हमारे खिलाफ है, लेकिन फिर भी हम कहते हैं कि हमारा मान बढ़ रहा है। जहां हम दखल देते हैं वहां हम मात खाते हैं लेकिन हम कहते हैं कि हम जीते हैं। हमको ऐसा ही लगता है जैसा कि हमारे मुहम्मद अली साहब ने कहा था, पहले विश्व युद्ध के समय, कि अंग्रेज़ बहादुर की फतह हो रही है लेकिन मुल्क पर अधिकार जर्मनों का हो रहा है। इसी तरह हम चाहते हैं कुछ और, और होता है कुछ और। मैं तो समझता हूं कि हमारी सरकार की नीति मूल रूप से गलत है। और वह मूलभूत गलती वह है जो कि सिद्धान्त के रूप में हमारे प्रधान मंत्री ने सदन के सामने रखी है। वह सिद्धान्त यह है कि सुरक्षा सामर्थ्य से नहीं होती। मैं नहीं समझता कि अपनी सामर्थ्य बढ़ाने से, अपनी शक्ति बढ़ाने से अस्त्र शस्त्र का बल बढ़ाने से यदि सुरक्षा नहीं बढ़ती तो क्या कमज़ोरी से, दुर्बलता से, और डरपोकपन से और दुनिया के सामने शान्ति के वक्तव्य देने से सुरक्षा बढ़ती है और शान्ति आती है? मैं इस पर विश्वास करने के लिए तैयार नहीं हूं। आज मैंने अपने मित्र लंका सुन्दरम् को भी अपने प्रधान मंत्री का बड़ा एडमायरर बनते देखा। उन्होंने कहा कि उदजन बम और एटम

[श्री वी० जी० देशपांडे]

बम के ऊपर हमारे प्रधान मंत्री का वक्तव्य निकलने से जो दुनिया का वायुमंडल बिगड़ गया था वह ठीक हो गया और जो गरमी पैदा हो गयी थी वह ठंडी हो गयी। मेरी समझ में सुरक्षा करने का एक मार्ग है और वह मार्ग एटम बम और उद्जन बम के दोष बतलाना नहीं है। किसी भी राष्ट्र के लिए सुरक्षा का मार्ग यही है कि वह यह सोचे कि उसका मित्र कौन है और शत्रु कौन है, उसका अपना शास्त्र बल क्या है। यह बातें आप जब तक नहीं समझते तब तक आप चाहे कितने ही वक्तव्य दें न आपकी सुरक्षा बढ़ सकती है और न दुनिया की सुरक्षा बढ़ सकती है। आज का वक्तव्य सुनकर मुझे निराशा इसलिए हुई बहुत दूर दूर के जो प्रश्न हैं उनकी तो चर्चा होती है लेकिन अपने देश की उतनी चर्चा नहीं होती। यहां बताया गया कि हमारी नीति प्रभावशाली तटस्थता की है जिसको मैं गतिमान तटस्थता कहता हूं। इसके बारे में चर्चा हुई। मैं तो समझता हूं कि हमारी नीति यह है कि देश के अन्दर कमजोरी रहे और बाहर जिन मामलों से हमारा सम्बन्ध नहीं है उन में हम अवश्य बोलें। जो हमारा दोस्त हो सकता है उसको अपने व्यवहार से चिढ़ायें। उनको यह नहीं मालूम होता कि ऐसा करने से वे हमारे दुश्मन बन जाते हैं। तो यह बातें हमारे यहां चल रही हैं। मैं तो यह ज़रूर कहूंगा कि इंडोनेशिया के बारे में जो प्रोपोज़ल हमारे प्राइम मिनिस्टर साहब ने रखे और जिनके बारे में बड़े झगड़े भी होते रहे, वह प्रपोज़ल रखने की कोई ज़रूरत नहीं थी। हिन्दुस्तान को ऐसा करने की कोई बड़ी आवश्यकता नहीं थी। एशिया के नेतृत्व की एक काल्पनिक चीज़ के पीछे लग कर दूसरों के मामलों में दखल देने की यह जो नीति चल रही है यह ठीक नहीं है। हमारे यहां स्वयं ही बहुत से झगड़े चल रहे हैं। फ्रांस के साथ पांडीचेरी के लिए हमारा झगड़ा है। गोआ के लिए हमारा झगड़ा है और काश्मीर के लिए पाकिस्तान से हमारा झगड़ा है। तो यह हमारे अपने झगड़े चल रहे हैं। मैं तो देखता हूं कि कांग्रेस जिसके लिए कोई नीति शुरू करती है फल उससे उलटा होता है। उन्होंने पाकिस्तान और हिन्दुस्तान को एक रखना चाहा पर नतीजा उलटा निकला। मैं तो चाहता हूं कि हम दुनिया के झगड़ों से अपने को अलग रखें। इस डाइनेमिक न्यट्रेलिटी की नीति के कारण हम दुनिया के गुटों से टकरा रहे हैं। अमरीका पाकिस्तान की मदद पर है और हमें आश्चर्य न होगा यदि भविष्य में हिन्दुस्तान के नज़दीक या उसी की भूमि पर लड़ाई हो। मैं समझता हूं कि एशिया की भमि पर हम आज फ्रांस, पुर्तगाल और अमरीका इन तीन देशों से टकरा रहे हैं और हमारी इस डाइनेमिक न्युट्रेलिटी की नीति का नतीजा यह होगा कि हम दुनिया के देशों के संघर्ष में पड़ जायेंगे। यह देख कर मैं फिर यह कहना चाहता हूं कि आप अपनी नीति को अब भी बदल दीजिये। हम अमरीका के खिलाफ चीन और कोरिया के बारे में बोलते रहे और अमरीका जाकर पाकिस्तान को मिल गया। फ्रांस से आज आपका झगड़ा हो रहा है। हमारे बहादुर लोग पांडीचेरी और फ्रांस के उपनिवेशों के लिए लड़ रहे हैं। उसी समय में बाक़ी देशों को अप्रसन्न करके उनसे लड़ाई करने का जो तरीका हम चला रहे हैं, मुझे उसका अर्थ समझ में नहीं आता। दुनिया में कालोनियलिज़्म न हो दुनिया में साम्राज्यवाद न हो, ऐशिया का नेतृत्व हमारे हाथों में रहे और बापू जी के बताये हुए पद चिन्हों पर शान्ति के सन्देश को लेकर हमारे प्रधान मंत्री आगे बढ़ रहे हैं और दुनिया में सर्वत्र शान्ति हो और एक शान्ति समिति हो इसके लिये रूस की ओर से यहां पर भारत में बुद्ध पूर्णिमा के पर्व पर लोग आ रहे हैं और उस 'सत्यमेव जयते' का घोष

करके उनका साथ दे रहे हैं और विचार किया जा रहा है कि दुनिया में कैसे शान्ति स्थापित की जाय। दुनिया में दूर दूर तो हजारों बार शान्ति के शब्दों का घोष हो रहा है लेकिन मैं पूछता हूं कि हमारी सीमा के नजदीक बसे हुए तिब्बत देश पर चीन ने आक्रमण किया है, उसके सम्बन्ध में क्या आपने कुछ कहा है ? अभी पांच मिनट पहले आप पुर्तगाल की निन्दा कर रहे थे कि पुर्तगाल की चार सौ साल पहले की ट्रीटी तो हम मानने को तैयार नहीं हैं, लेकिन चीन का सैकड़ों साल का पुराना आधिपत्य तिब्बत पर हो, उसके बारे में हम कुछ कहने को तैयार नहीं हैं। आपके घर के नजदीक जो झगड़ा चल रहा है उस झगड़े के सम्बन्ध में आप कहते हैं कि उसमें हमको क्या पड़ना है लेकिन हमको इस बात की बड़ी फिक्र है कि इंडोचीन में साम्राज्यवाद और कोलोनियलिज्म और उपनिवेशवाद न हो लेकिन घर के नजदीक जो साम्राज्यवाद किसी पर लादा जा रहा हो तो उसमें दखल न देना और उसके बारे में कुछ न कहना, इस-प्रकार की नीति मेरी समझ में सही नीति नहीं है और मेरी समझ में नहीं आता कि वे किस प्रकार की नीति बर्त रहे हैं ? जहां पर नीति सम्बन्धी बात आती है तो वहां हम साम्यवाद मान लेते हैं और रूस की तारीफ़ करने लगते हैं लेकिन जब हमारे नजदीक के ही देश तिब्बत में वह अपना आधिपत्य जमाते हैं तो हम उसके बारे में कुछ भी नहीं कहते, वैसे हमारा और रूस का भी संसार में यह दावा है कि हम शान्ति चाहते हैं और साम्राज्यवाद के खिलाफ़ हैं। रूस की जो तारीफ़ की जाती है तो उसके बारे में भी मुझे एक बात कहनी है। मैं रूस के खिलाफ़ नहीं हूं, किसी भी देश के खिलाफ़ नहीं हूं। मेरा और प्रधान मंत्री का एक ही मतभेद है। प्रधान मंत्री कम्युनिज्म के पक्ष में हैं और रूस के विरोध में हैं। मैं चाहता हूं कि आज जब अमरीका और आपका मुकाबला हो रहा है पाकिस्तान में अमरीका पाकिस्तान को मदद दे करके आपके नजदीक आ रहा है, ऐसे समय में आप को अपने सैन्य बल को बढ़ाना बहुत आवश्यक है और सैन्य और शस्त्र बल बढ़ा करके आपका मित्र कौन है और आपका शत्रु कौन है यह देखना चाहिये था। आप देखते हैं कि अमरीका आपके खिलाफ़ जा रहा है, अमरीका पाकिस्तान को मदद कर रहा है, मैं यह नहीं कहता हूं कि आप आज ही रूस की मदद लें लेकिन कल यदि आवश्यकता होती है तो आप उनसे ले सकें लेकिन उस समय तो आप न्यूट्रल हो जाते हैं अलबत्ता जो उनकी जो साम्यवादी विचारधारा है उन विचारधाराओं में आप उनके साथ हो जाते हैं, इस तरह की नीति का पालन करने से इस देश का कल्याण होने वाला नहीं है। फ्रांस, पुर्तगाल, पांडीचेरी और गोआ के सम्बन्ध में मैं यह कहना चाहता हूं कि हमारी सरकार जो नीति बरत रही है मैं उस नीति के साथ हूं और मैं उसका विरोध नहीं करता हूं,हां, इतना ज़रूर कहूंगा कि इससे और कोई ज्यादा बड़ा कदम इसके लिये उठाना आवश्यक है। इन बस्तियों की जनता स्वतन्त्रता के लिये आन्दोलन कर रही है। पांडेचेरी और फ्रांस का प्रश्न शायद बहुत थोड़े समय के अन्दर हल हो जायगा। गोआ की जनता जो विदेशी साम्राज्यवाद से मुक्ति पाने का आन्दोलन कर रही है, उसको हमें देखना है कि वह अपने प्रयत्न में सफल हो और स्वतन्त्रता प्राप्त करे। हमारे प्रधान मंत्री ने पुर्तगाल के बारे में जो कहा है उसके बारे में मैं पूर्णतः सहमत हूं। पुर्तगाल के प्रधान मंत्री के अनुसार गोआ पुर्तगाल का एक अविभाज्य अंग है। "Goa is an integral part of portugal." लेकिन मैं उनको बतलाऊं कि अगर उनका यह सिद्धांत है तो मेरा सिद्धांत यह है कि "" "Goa is an integral part of India." और अगर उनका सिद्धान्त मान लूं कि गोआ पुर्त्तगाल का एक हिस्सा है तो उसका अर्थ यह होता है कि

[श्री वी० जी० देशपांडे]

तमाम पुर्त्तगाल को गोआ समेत हिन्दुस्तान में शामिल होना पड़ेगा, इसके अलावा कोई दूसरा अर्थ इसका नहीं निकलता और चूंकि ये बस्तियां भारत का अविभाज्य अंग हैं इसलिये मैं अपने प्रधान मंत्री से कहना चाहूंगा कि आज उन बस्तियों में बसने वाली जनता पर तरह तरह के अत्याचार हो रहे हैं और वहां की जनता के स्वतन्त्रता आन्दोलन को डरा और धमका करके कुचलने का प्रयत्न वहां के विदेशी शासक कर रहे हैं और अब वक्त आ गया है कि जब भारत सरकार को उस जन आन्दोलन को सफल बनाने के लिये अब ज्यादा सहायता देने की आवश्यकता है। हमारे प्रधान मंत्री जी ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि यह जो हमारा कार्य है यह सैटिस्फैक्टरी नहीं है। मैं उनकी इस सम्बन्ध में जो नेशनल और इंटरनैशनल अड़चनें हैं उनको मैं समझता हूं लेकिन साथ ही मैं यह भी समझता हूं कि अब वक्त आ गया है जब हम चूपचाप हाथ पर हाथ धरे जनता पर यह अत्याचार होते नहीं देख सकते और हमारा वहां की जनता के प्रति एक उत्तरदायित्व है और उसे निभाने के लिये हो सकता है कि हमें कोई पुलिस ऐक्शन लेना पड़े अथवा और अन्य उपायों का अवलम्बन करना पड़े ताकि वहां की जनता भारत में विलय के लिये जो आन्दोलन कर रही है, वह उसमें सफल हो और बस्तियां जैसे गोआ, पांडेचेरी इत्यादि जो पाकेट्स हमारे देश का अंग है, वे भारत में सम्मिलित हो जायं। अब समय आ गया है जब भारत सरकार को इस प्रश्न को हल करने के वास्ते अधिक सक्रिय कदम उठाना आवश्यक जान पड़ता है।

अन्त में मैं एक ही प्रश्न पर जिसकी ओर मेरी समझ में लन्दन टाइम्स ने भी इशारा किया था कि हमारी जो कोलम्बो कांफ्रेंस हुई, वह दूर दूर के जितने प्रश्न होते हैं उन पर बड़ा निश्चित मत देती है। किलेन जैसे जैसे हम अपने नज़दीक के मस्लों पर आन लगते हैं त्यों वैसे वैसे यह सारे चुप होन लगते हैं, ठीक उसी प्रकार आज के भाषण में भी मैंने देखा कि हमारे प्रधान मंत्री ने बहुत दूर दूर की बातें जैसे इंडोचीन और कोरिया आदि के बारे में बहुत कुछ कहा लेकिन काश्मीर और पाक अमरीका सैनिक सहायता के प्रश्न पर कुछ नहीं बोले, उसके लिये कहा जा सकता है कि इस बारे में प्रधान मंत्री पहले ही बहुत कुछ कह चुके हैं इसलिये आज उनको दुहराने की शायद उन्होंने आवश्यकता नहीं समझी लेकिन मैं समझता हूं कि देश के सामने अन्तर्राष्ट्रीय और दूसरे जितने भी घर के प्रश्न हैं उन सबमें यह अमरीका द्वारा पाकिस्तान को सैनिक सहायता दिये जाने का प्रश्न मुख्य है और उसके परिणामस्वरूप युद्ध के आज जो काले बादल आये हैं उसके मुकाबले में यह छोटे छोटे सवाल जो देश में पैदा हुए हैं, कुछ भी नहीं हैं और हिन्दुस्तान को अपनी अन्तर्राष्ट्रीय नीति में सबसे पहले यह बात देखना है कि अमरीका के साथ यदि पाकिस्तान का गठबन्धन होता है और गठबन्धन होने के बाद अगर हिन्दुस्तान और अमरीका में काश्मीर के लिये कुछ कलह का निर्माण होता ह तो उस परिस्थिति में देश की विदेश नीति का एक ही लक्ष्य होना आवश्यक है कि पाकिस्तान और हिन्दुस्तान में यदि कोई संघर्ष उठ खड़ा होता है तो हमारी सहायता कौन करेगा और उसका कामयाबी से मुकाबला करने के लिये हमें किस प्रकार से आर्थिक, सुरक्षा और बाकी अन्य सब दृष्टियों से अपने देश का संगठन करना है। हमें यह भी देखना है कि इस देश के भीतर जो फिफ्थ काल्मनिस्ट्स (पंचमार्गी) काम कर रहे हैं उनसे भी अपने को सुरक्षित रखना है और सावधान रहना है कि कहीं हम उनकी चालबाज़ी में न फंस जायें। आज जिधर देखो देश में नागरिक स्वतन्त्रता

की आवाज़ उठायी जा रही है, मैं साफ़ कर दूं कि मैं नागरिक स्वतन्त्रता का कोई विरोधी नहीं हूं, मैं उसका पक्षपाती हूं लेकिन साथ ही अपने देश की स्वतन्त्रता और उसकी सुरक्षा पर मैं कोई आंच आते नहीं देखना चाहता। इस सम्बन्ध में मैं आपको बतलाऊं कि अभी श्री बख्शी ने श्री जयप्रकाश नारायण को आउट-साइडर घोषित किया, मैं श्री जयप्रकाश नारायण को देश के बाहर का कहने के लिये तैयार नहीं हूं। डाक्टर अशरफ सेंट परसेंट राष्ट्रीय माने जाय और काश्मीर में उनके जाने का स्वागत किया जाय, मेरी समझ में नहीं जाता है परन्तु मैं यहां पर यह ज़रूर कहूंगा कि श्री जयप्रकाश नारायण ने जो नीति शेख अब्दुल्ला के बारे में रक्खी है उस नीति का मैं विरोध करना चाहता हूं और काश्मीर की सुरक्षा की दृष्टि से वहां पर जो २ क़दम भी उठाये गये हैं उन सब कदमों का मैं समर्थन करता हूं। काश्मीर के प्रश्न के बारे में मुझे केवल इतना ही कहना है कि काश्मीर का प्रश्न तब तक अन्तिम रूप से नहीं निपटेगा जब तक आप काश्मीर का प्रश्न सुरक्षा परिषद् से हटा नहीं लेते और काश्मीर को बाकी दूसरी देशी रियासतों की तरह भारत में मिला कर और काश्मीर को और हिन्दुस्तान का एक राष्ट्र बना कर पाकिस्तान का मकाबला नहीं करते।

श्री व्रजेश्वर प्रसाद (गया—पूर्व): चीन से समझौता करने के लिये मैं प्रधान मंत्री को बधाई देता हूं। उन्हों ने यह भी कहा है कि यदि एशिया के अन्य भागों में भी इसी प्रकार के समझौते किये जा सकें तो शान्ति का साम्राज्य और भी विस्तृत हो सकता है। मैं सुझाव देता हूं कि रूस से भी ऐसा ही समझौता किया जाये।

सामूहिक सुरक्षा तब तक सम्भव नहीं जब तक कि वह सामूहिक शान्ति में न परिवर्तित कर दी जाय। क्या मैं यह सुझाव रख सकता हूं कि सामूहिक शान्ति केवल प्रस्तुत दशा में परिवर्तन कर के ही प्राप्त हो सकती है। प्रमुख समस्या यह है कि युद्ध किये बिना प्रस्तुत दशा में परिवर्तन किस प्रकार किया जाये। एशिया में यह चीन तथा रूस के साथ निकट सम्पक करने से हो सकता है। चीन तथा रूस से एक आपसी रक्षा समझौता करना इस समय अत्यावश्यक है। प्रधान मंत्री ने पिछली बार लन्दन में कहा था कि भारत को साम्यवाद से कोई बाह्य संकट नहीं है। यदि यह सत्य है तो रूस को हम धर्म युद्ध करने वाला किस प्रकार कह सकते हैं? मैं इस के उत्तर की प्रतीक्षा करता हूं। रूस तो, जैसा कि प्रधान मंत्री को भली भांति विदित है, १९१७ में साम्यवाद की उत्पत्ति से अब तक रक्षात्मक प्रयत्न करता चला आ रहा है। रक्षात्मक नीति का अनुसरण करने वाली शक्ति कभी भी धर्म युद्ध करने वाला नहीं हो सकती। रूस को यदि जिहादी कहें तो वह केवल सैद्धान्तिक दृष्टि से ही जिहादी है। इस के विपरीत अमरीका व्यवहारिक रूप से जिहादी है, मुझे इस बात में भी सन्देह है कि अमरीका को जिहादी कहा जा सकता है। क्योंकि मैं समझता हूं कि जिहादी के जीवन में कुछ नैतिक आदर्श होते हैं। क्या अमरीका के कोई नैतिक आदर्श हैं जिन्हें वह बनाय रखना चाहता है? प्राचीन काल के ईसाई तथा मुसलमान जिहादी थे क्योंकि वे किसी धर्म को सर्व श्रेष्ठ मानते थे और सारे विश्व में उस को फैलाने के लिये अपने जीवन का बलिदान देन को तैयार होते थे। अमरीका का क्या हाल है? हिन्दचीन तथा कोरिया में वह अपने विरोधी अर्थात् रूस को हटा नहीं सका है। वह लोकतन्त्र में विश्वास रखता है और कहता है कि रूस में लोकतन्त्र को नहीं माना जा रहा है। परन्तु यह कहना ठीक नहीं है कि साम्यवादियों के सिद्धान्त में कोई भी सचाई नहीं है।

१ म० प०

यह ठीक है कि अमरीका कहता है कि वह लोकतन्त्र के लिये लड़ रहा है।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

परन्तु यदि रूस में किसी भी रूप में तानाशाही है तो इस का उत्तरदायित्व भी अमरीका पर है क्योंकि रूस के लोगों के मन में अमरीका का भय है ।

प्रधान मंत्री नें कहा है कि हम युद्ध नहीं चाहते । मैं उन से सहमत हूं । मैं नहीं कहना चाहता कि रूस तथा चीन हमारे स्थायी मित्र हैं । जब तक कि एक एशियाई राज्य स्थापित नहीं होता और जब तक राजनैतिक गुट-बन्दियां चलती रहेंगी तब तक हमें भी यही गुटबन्दी का खेल खेलना होगा । यह स्थिति तब ही बदल सकती है जब एशिया में किसी प्रकार का राजनैतिक एकीकरण नहीं होता अमरीका नें विश्व भर में अपना प्रभाव क्षेत्र बना रखा है । यदि हम युद्ध नहीं चाहते तो हमें रूस तथा चीन से मिल कर एशिया में अमरीकी चालों को असफल बनाना है । हम रूस को भूल नहीं सकते । रूस एशिया का सब से बड़ा तथा शक्तिशाली देश है । इसलिय हमें रूस के साथ एक दूसरे पर हमला न करने का करार करना चाहिये ।

हमें एक बात अच्छी तरह सोचनी चाहिय । मध्य पूर्व में क्या हो रहा है ? एक एक करके वहां के सारे राष्ट्र अमरीका के पंजे में आ रहे हैं । अमरीकनों का यह ख्याल है कि एक नया आटोमैन साम्राज्य खड़ा करें जिस की राजधानी वास्तव में वाशिंगटन हो । यदि वह ऐसा साम्राज्य बना ले तो भारत को बहुत हानि पहुंचेगी । चंगेज़ खां और तिमूर लंग के दिन फिर से आयेंगे । हम समझते थे कि मुस्लिम राष्ट्रों का गुट बनने का जो खतरा है वह गलत है और उस में कोई वास्तविकता नहीं । परन्तु मध्य पूर्व में एसी ही बात चली जा रही है और इस का चलाने वाला अमरीका है ।

मै समझता हूं कि दो सम्भावनायें हैं : या तो अमरीकन एशिया में से चले जायेंगें नहीं तो रूस तथा अमरीका के बीच एक दूसरे पर आक्रमण न करन की संधि होगी । यदि एसा हुआ तो भारत पर क्या प्रभाव पड़ेगा । यदि अमरीकी सहायता प्राप्त शक्तिशाली मध्यपूर्व हम पर आक्रमण करता है तो हमारा कोई साथ देने वाला नहीं होगा । काश्मीर का मसला अभी तक हल नहीं होने पाया है । यदि पाकिस्तान अमरीकी सहायता से इस मामले की बिना पर हमारे ऊपर आक्रमण करे तो हम किस से सहायता लेंगें ? मैं समझता हूं कि हमारे लिये एक ही अच्छा ढंग है और वह यह है कि पश्चिमी पाकिस्तान के लिये रूस तथा भारत दो विपक्ष हों और पूर्वी पाकिस्तान के लिये चीन तथा भारत ।

मैं ने पहले बताया है कि या तो अमरीकन एशिया में से चले जायेंग नहीं तो रूस के साथ उन का कुछ समझौता होगा । यदि अमरीका यहां से चला जाय तो स्थिति और ही होगी, तब रूस और चीन अपने अपने प्रभाव के क्षेत्र बना लेंगे । इसलिये यदि हम आज रूस तथा चीन से समझौता करें तो हमारी स्थिति शक्तिशाली होगी और हम एशिया को रूस तथा चीन के बीच बाटें जाने से बचायेंगे । एशिया का ऐसा विभाजन होना बहुत ही दुर्भाग्य की बात होगी ।

श्री जोकीम आल्वा (कनारा) : सब से पहले मैं आचार्य कृपलानी के भाषण का ज़िक्र करना चाहता हूं । जब उन्हों ने देश की राष्ट्रीय नीति की चर्चा की जो कि आधारभूत है और जिस पर सभी सहमत हैं । यह नीति हमारे प्रधान मंत्री ने हमारी परम्पराओं के आधार पर तथा इस बात को देखते हुए निर्धारिता की थी कि हमारे पास है क्या ? हमारे पास न तो हथियार हैं और न ही कोई बड़ी वायु सेना या नौ सेना । हम चीन के साथ, जो हमारा पड़ौसी राष्ट्र है, लड़ नहीं सकते । हम चीन के साथ झगड़ा कर के अपनी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग नहीं करना चाहते । हम ने ऐसा किया

तो हम ऐसे झगड़े में फंस जायेंगे जिस से कि हम सौ बरस में भी निकल न पायेंगे । हमें विदेशी प्रचार के प्रभाव में नहीं आना चाहिये । एशियाई सम्मेलन में कोमिन्टांग के प्रतिनिधियों ने इस बात पर आपत्ति की थी कि पण्डाल पर यह चिह्न क्यों है कि तिब्बत न तो चीन का है और न किसी अन्य देश का । कोमिन्टांग वाले पश्चिमी राष्ट्रों के कहने में आ कर तबाह हो गये ।

सन यात सेन चीन तथा जापान के बीच मित्रता देखना चाहते थे, हमारे शिष्टमण्डल ने, जो जापान गया था, आ कर बताया कि चीन और जापान एक दूसरे के मित्र होना चाहते हैं, परस्पर व्यापार सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं । हम ने सान फ्रांसिस्को सन्धि पर हस्ताक्षर करने से इन्कार किया--इस के लिये जापानी हमारे कृतज्ञ हैं । आज जापान वालों पर पश्चिम वालों का आधिपत्य है, वहां पश्चिमी रीति रिवाज चालू हो गये हैं ।

आचार्य कृपलानी ने कहा कि हमारी विदेश नीति यह है कि हम अमरीका के गुलाम हैं और हम आप के प्रधान मंत्री का आदर करते हैं क्योंकि उन्हों ने संसार में अहिंसा तथा शान्ति स्थापित कर दी है । यह बड़े दुःख की बात है कि उन्हों ने ऐसी बात कही ।

सभापति महोदय : माननीय सदस्य कल अपना भाषण जारी रखें । १८ मई के ९-१५ म०पू० तक वाद विवाद होगा और फिर माननीय प्रधान मंत्री वाद विवाद का उत्तर देंगे ।

इस के पश्चात् लोक-सभा १८ मई, १९५४ के सवा आठ बजे तक के लिये स्थगित हुई ।

GIPD—HS—190 PSD—24-11-54—285